चाय उत्पादन भारत का एक महत्त्वपूर्ण उद्योग है। यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया मिस्र, ईराक, अफगानिस्तान आदि देश भारतीय चाय ही पीते हैं। चाय विदेशी मुद्रा अर्जित करने का एक प्रमुख साधन है।

हिन्दी या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में इतने महत्त्वपूर्ण उद्योग और लोकप्रिय पेय के सम्बन्ध में जन-साधारण को जानकारी देने के लिए कोई पुस्तक नहीं थी। श्री भगवानसिंह चाय बोर्ड के अध्यक्ष रह चुके हैं, वे इस विषय के विशेषज्ञ हैं, उनकी यह पुस्तक हिन्दी भाषा के एक अभाव की पूर्ति की दिशा में एक प्रयत्न है।

भगवान सिंह

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा एवं युवक सेवा मन्त्रालय
भारत सरकार के सहयोग से प्रकाशित

मूल्य : तीन रुपये पचहत्तर पैसे

हरिहर प्रेस, दिल्ली, में मुद्रित
CHAY, by Bhagwan Singh Rs. 3.75
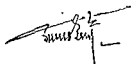
दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय के तत्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। इन योजनाओं में से एक प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। योजना के अधीन भारत सरकार निश्चित संख्या में प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियां खरीदकर उन्हें मदद पहुंचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक राजपाल एण्ड सन्ज़ द्वारा इसी योजना के अंतर्गत प्रकाशित की जा रही है। इसका लेखन प्रकाशक ने स्वयं कराया है और पुनरीक्षण की व्यवस्था निदेशालय के परामर्श से की गई है।

चाय भारत के महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादनों में से एक है और लोकप्रिय पेय है। चाय-बागान में और तदनंतर देशी और विदेशी बाज़ारों तक की इसकी जीवन-यात्रा के विभिन्न चरणों से हमारा कम ही परिचय है। इस प्रकार की अंतरंग झांकी हिन्दी में प्रस्तुत करनेवाली संभवतः यह अपने ढंग की पहली ही पुस्तक है।

आशा है हिन्दी के पाठक इस प्रकाशन से लाभान्वित होंगे।

(गोपाल शर्मा)
निदेशक

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय,
(शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय)
भारत सरकार, नई दिल्ली।

प्रास्ताविक

प्राचीनतम भारतीय साहित्य मे सोम-रस का जितना अधिक गौरव-गान किया गया है उतनी ही अधिक रहस्यमय उसकी पहचान भी है। इस पहचान की समस्या का समाधान आज तक नही हो सका।

बंगाली कविराजों से कई बार मुझे यह सुनने का अवसर आया—

श्यामपर्णी सितायुक्ता
पेया नैरोग्यमिच्छता।

अर्थात् जो मनुष्य नीरोग रहना चाहे वह सिता (चीनी)- मिश्रित श्यामपर्णी का पान करें। पर यह 'श्यामपर्णी' भी मेरे लिए एक पहेली ही बनी रही।

उपर्युक्त दो समस्याओं को सालों से मन मे पाले हुए था। जब मैं (इंडियन टी-बोर्ड का चेयरमैन बना और चाय के रूप-रंग-रस से निकट से परिचित होने का अवसर मिला तब अचानक ही दोनों पुराने रहस्य खुल-से गए। मुझे विश्वास-सा होने लगा कि चाय ही सोमरस है और श्यामपर्णी भी चाय का ही एक नाम।

इसलिए इस देश मे झोपड़ियो से लेकर राज-प्रासादो तक चाय का प्रचलन आश्चर्य का विषय नही है। इस देश की सीमाओ से बाहर सुदूर यूरोप-अमरीका और एशिया-अफ्रीका महाद्वीपों के हर देश मे अनेक प्रकार मे इसके तैयार करने और पीने-पिलाने के प्रकार प्रचलित हैं। यह तथ्य इसकी लोकप्रियता का ज्वलन्त प्रमाण है।

इस उपयोगिता के अतिरिक्त भारत के सन्दर्भ मे चाय का आर्थिक पक्ष भी अति उज्ज्वल है। जूट को छोड़कर भारत से विदेशों को निर्यात किए जाने वाले पदार्थों में चाय ही सबसे अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित करती है।

इतना होने पर भी चाय के उत्पादन, व्यापार व आर्थिक महत्त्व से

भूमिका

कुछ वर्ष पूर्व मुझे श्री भगवान सिंह द्वारा लिखित 'रत्नगर्भा भारत-भूमि' पढ़ने का अवसर मिला था। खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में लिखी गई उस रोचक पुस्तक के लिए मैंने उन्हें हार्दिक बधाई दी थी। अब उनकी दूसरी पुस्तक 'भारतीय चाय' मेरे सामने है।

चाय-उत्पादन भारत का एक महत्वपूर्ण उद्योग तथा विदेशी मुद्रा अर्जित करने का एक प्रमुख साधन है। चाय का सर्वाधिक उत्पादन यहीं होता है। यह उद्योग आज इतनी उन्नति कर गया है कि इसमें १० लाख से अधिक व्यक्ति काम करते हैं। भारतीय चाय का निर्यात संसार के अन्य चाय-उत्पादक देशों की तुलना में सर्वाधिक है। इंग्लैंड, अमरीका, रूस, मिस्र, पश्चिमी जर्मनी, स्वीडन, आस्ट्रेलिया, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, इटली, इराक, अफगानिस्तान आदि देश अधिकाश में भारतीय चाय ही पीते हैं।

वाणिज्य मन्त्री होने के नाते चाय उद्योग में मेरी गहरी रुचि है। मैं चाहता हू कि चाय हमारे देश के लिए अधिकाधिक विदेशी मुद्रा अर्जित करे। भारतीय चाय उद्योग इस बात के प्रति पूर्णतया सजग रहे कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में चल रही प्रतियोगिता में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक पग उठाने में किसी प्रकार का विलम्ब न हो। चाय की श्रेष्ठता कायम रखने, मूल्यों को प्रतिस्पर्धा के उपयुक्त बनाने, विदेशों में चाय-बाजार का विस्तार करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।

चाय के सम्बन्ध में अंग्रेजी में कई पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं तथा कई अच्छी पुस्तकें भी हैं। किन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में इतने महत्वपूर्ण उद्योग और लोकप्रिय पेय के सम्बन्ध में जनसाधारण को जानकारी देने के लिए कोई पुस्तक नहीं थी, यह खेद की बात थी। श्री भगवान सिंह चाय-बोर्ड के अध्यक्ष रह चुके हैं और

उनके काल (1967-68) में चाय उत्पादन और निर्यात के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किया गया था। वे इस विषय के विशेषज्ञ हैं और सरकारी क्षेत्र में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने काफी कार्य किया है। दोनों क्षेत्रों में उनकी गति देखकर कुछ समय पूर्व मैंने उनसे कहा था कि भारतीय चाय के सम्बन्ध में भी 'रत्नगर्भा भारत-भूमि' जैसी पुस्तक लिखने का कष्ट करें। अनेक व्यस्तताओं के होते हुए भी उन्होंने इस कार्य को किया; इससे मुझे प्रसन्नता हुई है। उनकी यह पुस्तक हिन्दी भाषा के एक अभाव की पूर्ति की दिशा में एक प्रयत्न है। मैं चाहता हूं, ऐसे अनेक प्रयत्न हों। जिससे अछूते विषय हिन्दी में आएं। राष्ट्रभाषा का मार्ग प्रशस्त होने में इनसे सहायता मिलेगी।

मैं लेखक को इस पुस्तक के लिए पुनः बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि हिन्दी-जगत इस पुस्तक का स्वागत करेगा।

दिनेश सिंह
(वाणिज्य मन्त्री, भारत सरकार)

क्रम

1
चाय की कहानी

विक्रय के लिये नहीं

चाय, जो वनस्पति शास्त्र में कैमेलिया साइनेन्सिस कहलाती है, का पहला पौधा कहां उपजा और सर्वप्रथम चाय का उपयोग कहां हुआ, इस सम्बन्ध मे अलग-अलग मान्यताए हैं। चीन मे चाय का उपयोग चौथी शताब्दी में होने लगा था। बर्मा, असम और भारत-बर्मा के सीमावर्ती क्षेत्रों म भी इसका प्रयोग उन्हीं दिनों से किया जा रहा है, ऐसा माना जाता है। कुछ विद्वानो का यह मत भी है कि उत्तर-पूर्वी भारत के कुछ क्षेत्रो मे चाय का प्रयोग लगभग 2,500 वर्ष ईसा पूर्व भी किया जाता था।

चीन में भी चाय की उत्पत्ति के सम्बंध में कई लोक-कथाएं हैं, जिनमें से एक इस प्रकार है—सैकड़ों वर्ष पहले शकालु प्रवृत्ति का एक राजा था। एक बार उसका कारवा घने जंगल मे ठहरा हुआ था। राजा एक वृक्ष के नीचे कालीन पर विराजमान था। उसके नाश्ते के लिए फलादि रखे थे। एक ओर उसके लिए दूध गर्म किया जा रहा था। अचानक राजा की दृष्टि दूध की ओर गई। गर्म होते दूध में कुछ हरी पत्तिया गिरी हुई देखकर राजा ने समझा कि किसी ने दूध मे विषैली पत्तिया मिला दी है। जब वह दूध राजा के लिए लाया गया तो राजा ने दूध लानेवाले सेवक से कहा कि उस दूध को पहले वही व्यक्ति पिए। सेवक ने आज्ञा का पालन किया। उसकी दशा ठीक देख राजा ने पूछा कि उसे कैसा लग रहा है? सेवक ने बताया कि दूध पीकर उसकी

थकान और सुस्ती दूर हो गई है। यह सुन राजा ने भी दूध पिया और उसे ताजगी अनुभव हुई। यह चाय की पत्तियों का प्रभाव था।

एक जापानी लोक-कथा के अनुसार पहली बार चाय के पौधे का पता एक भारतीय बौद्ध भिक्षु ने लगाया था। यह बौद्ध भिक्षु भारत से जापान इसलिए जा रहा था कि वहां पहुंचकर भगवान बुद्ध के संदेश का प्रचार करेगा। जब वह पीकिंग पहुंचा तो उसने प्रतिज्ञा की कि वह पूरे 9 साल एकनिष्ठ भाव से आराधना करेगा। लेकिन चिन्तन-मनन के बीच उसे एक बार ऐसा अनुभव हुआ कि उसकी पलकें झपकने लगी हैं। क्रुद्ध होकर उसने अपनी पलकें नोच डालीं और उन्हें भूमि पर फेंक दिया। जहां वे पलकें गिरीं वहां एक हरा पौधा उग आया। आश्चर्यचकित भिक्षु ने उस पौधे की पत्तियां तोड़ी, उन्हें जल में उबाला और पी लिया। इससे वह भिक्षु पुनः चैतन्य हो उठा। यह भिक्षु चीन से जापान पहुंचा और वहीं उसकी मृत्यु हुई।

चाय के पहले पौधे की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न मत होने पर भी इस बारे में प्रायः सभी सहमत हैं कि चाय का पहला पौधा एशिया में उपजा, और चाय का सर्वप्रथम प्रयोग एशिया में ही हुआ; लेकिन चाय के पेय को सारे संसार में फैलाने का श्रेय योरोपीय देशों को ही है। सोलहवीं शताब्दी में जब योरोपीय देशों का ध्यान एशियाई देशों की ओर गया और वहां के यात्री भारत, जावा, सुमात्रा, चीन आदि देशों तक पहुंचने लगे, तो सन् 1559 में चाय योरप की जानकारी में आई। तदुपरांत डच व्यापारी चाय को योरप ले जाने लगे और वहां के विभिन्न नगरों में चाय का प्रयोग आरम्भ हुआ। किन्तु उन दिनों चाय पीना साधारण व्यक्ति के बस की बात नहीं थी, वह इतनी मंहगी थी कि केवल सम्पन्न व्यक्ति ही विशेष अवसरों पर चाय पीते थे।

सन् 1664 में इंगलैंड के राजा चार्ल्स द्वितीय को भेंट करने

के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी के गवर्नर ने . पौंड 2 औंस (लगभग 960 ग्राम) चाय 85 शिलिंग में खरीदी थी। दो वर्ष बाद कम्पनी द्वारा राजा को 22 पौंड 12 औंस (10 25 किलोग्राम) चाय भेंट की गई। सन् 17 0 के आसपास लंदन में फुटकर काली चाय 20 से 30 शिलिंग प्रति 450 ग्राम बिकती थी, और हरी चाय का भाव 12 से 30 शिलिंग प्रति 450 ग्राम था। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक चायपान का प्रचलन नगरवासियों तक ही सीमित रहा। प्रो० नार्थकोट पार्किसन के अनुसार सम्भवतया 1784 और 1789 के बीच चाय "महलों से निकलकर झोंपड़ियों तक पहुंची।" सन् 1800 के आसपास तक इंगलैंड में चाय का इतना प्रचलन हो गया कि वह घर-घर उपयोग की जाने लगी। इन दिनों चीन देश की चाय ही ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा विदेशों में पहुंचती थी।

इस बीच ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारी इस बारे में सोच-विचार कर रहे थे कि चाय का उत्पादन भारत में ही बड़े पैमाने पर क्यों न आरम्भ कर दिया जाए। सन् 1788 में सर जोसेफ बैंक्स ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को सुझाया था कि चाय की खेती कम्पनी के संरक्षण में भारत में आरम्भ की जाए, किन्तु कम्पनी इसपर सहमत नहीं हुई; क्योंकि चीन की चाय के व्यापार पर उस समय इस कम्पनी का एकाधिकार था। 1793 में लार्ड मैक्कार्टनी ने चाय की खेती करने के लिए चीन की चाय के बीज भेजे थे। इन प्रयत्नों के पीछे यही उद्देश्य था कि किसी तरह चाय की खेती को व्यापारिक रूप दिया जाए।

आज चाय उद्योग का जो विकास हुआ है, उसका श्रेय चाय के उस देसी पौधे की खोज को है, जो असम में मिला है। आधुनिक वनस्पतिशास्त्री ऐसा मानते हैं कि उत्तर-पूर्वी भारत में यह पौधा बहुत प्राचीनकाल से विद्यमान था, असम में चाय के देसी पौधे की खोज करने का दावा कई व्यक्तियों ने किया है। कुछ लोगों का मत है कि मनीरम दीवान ने ही इस पौधे की

खोज की थी और वह मेजर राबर्ट ब्रूस को यह पौधा दिखाने के लिए साथ ले गए थे। इस पौधे की खोज किसी ने की हो, यह सर्वविदित है कि राबर्ट ब्रूस के भाई चार्ल्स ब्रूस ने भारतीय चाय के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

प्रारम्भ में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में चाय की खेती करने के सम्बन्ध में उदार न थी, किन्तु ब्रूस बंधु तथा अन्य कई अधिकारी इस काम के प्रति काफी उत्सुक थे। वे चाहते थे कि चाय की खेती कम्पनी के संरक्षण में की जाए और फिर उसका निर्यात भी कम्पनी ही करे।

जब सन् 1833 में चीन की चाय के व्यापार पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का एकाधिकार समाप्त हो गया तो अधिकारियों के आग्रह पर कम्पनी ने निर्णय किया कि यह कम्पनी अब अपने ही नियंत्रण में चाय का उत्पादन करेगी। भारत के गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने सन् 1834 में भारत में चाय की खेती आरम्भ करने के विषय में विचार-विमर्श करने के लिए एक समिति बनाई।

असम घाटी के कार्यभारी अधिकारी, कप्तान जेन्किंस, गोहाटी में रहते थे, जब उन्हें इस समिति के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ तो उन्होंने 8 नवम्बर, 1834 को असम घाटी के चाय के पौधे, बीज और किसलयों के नमूने कलकत्ता भेजे, उनसे इस बात की पुष्टि हो गई कि चाय का देसी पौधा चीन की चाय के पौधे के समान ही है। देश में ही चाय का पौधा मिल जाने से भारत में चाय की खेती को आरम्भ कराने के इच्छुक व्यक्तियों का उत्साह बढ़ गया और इस पक्ष के विरोधी भी यह मानने लगे कि जब भारत में ही चाय उपलब्ध है तो चीन से चाय मंगाना समय और श्रम बरबाद करना नहीं तो और क्या है?

सन् 1835 में वैज्ञानिकों का एक प्रतिनिधिमण्डल इस उद्योग के [illegible] से संबंधित संभावनाओं का पता लगाने के लिए असम [illegible] ने असम-बर्मा के बीच की पर्वत-

मालाओं में उगे चाय के पौधे देखे। डिब्रू और दिहंग नदियों के बीच के क्षेत्र में भी इस प्रतिनिधिमण्डल को चाय के पौधे मिले।

सन् 1836 में चार्ल्स ब्रूस को सरकारी चाय वनों का अधीक्षक बना दिया गया। सन् 1838 में उन्होंने एक लेख प्रकाशित किया जिसमें जंगली चाय की खोज से संबंधित विवरण मानचित्र सहित दिया गया।

जब यह सिद्ध हो गया कि असम में चाय उत्पादन सफलता-पूर्वक किया जा सकता है, तो लंदन और कलकत्ता के अनेक पूंजीपतियों ने सरकार से अनुरोध किया कि चाय-बागान का उत्तरदायित्व उन्हें सौंप दिया जाए। सन् 1839 में कलकत्ता में बंगाल टी कम्पनी की स्थापना हुई और उसी वर्ष लंदन में भी एक संयुक्त स्टाक कम्पनी बनाई गई, दोनों का उद्देश्य था—ईस्ट इंडिया कम्पनी के चाय-बागान खरीदकर चाय उद्योग का विकास भली प्रकार किया जाए, ताकि चाय उद्योग पर चीन के एकाधिपत्य को समाप्त किया जा सके। बाद में ये दोनों कम्प-नियां एक हो गईं, इस प्रकार भारत में चाय उद्योग का सूत्रपात हुआ।

आरम्भ में भारतीय चाय के विकास के मार्ग में देशी प्रशि-क्षित मजदूरों की कमी और परिवहन सम्बन्धी कई कठिनाइयां आईं, किन्तु लंदन के बाजारों में भारतीय चाय का जिस प्रकार स्वागत हुआ, उससे भारतीय चाय उद्योग के प्रणेताओं का उत्साह बढ़ा।

इंगलैंड में भारतीय चाय की खपत धीरे-धीरे बढ़ती गई। सन् 1836 में स्थिति यह थी कि इंगलैंड में 220.5 लाख कि० ग्राम चाय का आयात हुआ था, जिसमें एक प्रतिशत चाय भी भारतीय नहीं थी, सारी चाय चीन से आई थी। लगभग दो वर्ष बाद अर्थात् 10 जनवरी, 1839 को भारत की चाय पहली बार लंदन पहुंची। बीस वर्ष बाद अर्थात् सन् 1859 में स्थिति यह हो गई कि इंगलैंड में बाहर से 310.5 लाख किलोग्राम चाय

मंगाई गई जिसमें से 3 प्रतिशत यान
भारतीय थी। 1900 के आसपास
इतना विकास हो गया था कि 19 व
इंगलैंड द्वारा लगभग 1,125 लाख
किया गया, जिसमें से 55 प्रतिशत
श्रीलंका और केवल 5 प्रतिशत चाय

इगलैंड में चाय पान की प्रथा
आयात बढ़ा। चाय के प्रति अंग्रेजों
देशों के लोग भी इसके प्रति आकर्षित
लोकप्रियता का भी अपना ही इतिहास
दिनों में कितने ही लोगों ने इसका
इसकी सराहना भी की। चाय को ले
तक वाद-विवाद चलता रहा।

18वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों
चाय के पक्ष और विपक्ष में काफी
एक प्रतिष्ठित व्यक्ति जॉन वेस्ले ने
किया, लेकिन लन्दन के वेस्ले संग्रहाल
का चाय का एक विशाल पात्र रखा हु
प्रचारक जॉन वेस्ले का है जो सार्वजनि
की निन्दा किया करता तथा चाय पीन
करता था, यह कहकर कि चाय पीने
बिगड़ता है। बाहर तो यह सज्जन चाय
करते थे, लेकिन स्वयं प्याले में चाय
दूसरा प्याला चढ़ाया करते थे।

इस प्रचारक के इस उपदेश पर
ने कान दिया हो, क्योंकि 1657 में
इंगलैंड में आगमन हुआ था वह 18वीं
प्रिय पेय बन चुकी थी।

चाय की प्रशंसा करते हुए सन् 1

'चाय का गीत' नामक एक कविता लिखी। इस कविता में चाय की विभिन्न प्रकार से प्रशंसा तथा गुणगान किया गया है। कविता का भावानुवाद है :

मेरे इस गीत का विषय है—प्रभामयी चाय
आओ, सुन्दरियो, मेरा गीत सुनो
जिसे तुम इतना अधिक प्रेम करती हो,
उसीका मैं गायक हूं,
उसी की धूम मचाने के लिए गीत गाता हूं।
बेर, जौ और अंगूरों से पहले
किसका रंग-रूप निखरा;
हर कोई जानता है यह बात,
फल से पहले सदा होता है जन्म पत्ती का।
अंगूर और सेव आकर मन मोह लेते
इससे पहले ही
जन्मदाता के हाथों फली-फूली है चाय।
सुन्दरियों और बुद्धिमानों की 'मदिरा' है चाय,
जो नशा किए बिना ही
मन में भर देती है उमंगें अथाह,
जबकि मदिरा करती है इतना गुमराह;
चेतना कुंठित हो जाती है
व्यक्ति-व्यक्ति की :
विपरीत इसके
चाय के असर से
नाड़ियों में प्रवाहित रक्त लेने लगता है हिलोरें,
इंद्रियां खिल उठती हैं,
और सजग हो जाती है चेतना व्यक्ति-व्यक्ति की,
तद्रिल आंखें, शंकाग्रस्त तन-मन
और मनोविकार दूर हो जाते हैं।

चाय अपने प्रेमियों में सहृदयता बढ़ाती है ।
वे मुसकराते हैं,
चुस्कियां लेते हैं ।
मधुमक्खियों की तरह बातें करते हैं
विवाह, जन्म, कुल की ।
पति-पत्नी
चर्चा करते हैं संतान की ।
आंखों से प्यार छलकता है,
प्रेम का आदान-प्रदान,
ध्वनि की लहरें,
मासूम बातें,
संगीत भरी आवाजें,
मनमोहक आकर्षक दृश्य,
चाय की प्यालियां
आतुर प्रतीक्षार्थी आंखें,
चित्रवत् छवि तुम देख सकते हो।
मधुर कुमारी दिखाना
अपने प्रियजन के साथ
है विद्यमान यहां ।

अठारहवीं शताब्दी में प्रचलित शैली के अनुसार कवि दाराब का महफ़िल में चाय-पार्टी की तुलना करते हुए आगे कहता है :

प्रसन्नचित्त बैरा पत्नी के साथ
मुसकराते हुए खामोश प्यार परखता है,
और अगर वह कान लगाकर
बातें सुनने का शौकीन है,
तो सुनकर सुन्दरी की बात
अधिक सुर्ख़ बन जाता है ।

क्लब, थियेटर, विश्वविद्यालयों और रणक्षेत्र की तुलना में
चाय-पार्टी अधिक हितकर और कल्याणकारी है;
वहां अगर नासमझी, चालाकी, बुराई की भरमार है
यहां अच्छाई, सूझबूझ और समझदारी है।
चाय शरीर और जिह्वा की ठंडी शिराओं में
जोश भर देती है,
और कम बोलनेवालों को शब्द
और दुर्बल को शक्ति देती है,
और वृद्ध का कायाकल्प कर देती है,
नव-यौवनाओं को सच बोलना सिखा देती है।
वे प्रसन्न हैं जो सुन्दरियों के समीप हैं,
वे निर्विकार हैं, संयत हैं,
वे अपने कार्य के उपयुक्त हैं;
उनकी दृष्टि है गम्भीर,
आकृति शांत,
विनम्र व्यवहार।
शराबी शोर मचाता है, ज़मीन पर पांव पटकता है, घूरता है;
पांव लड़खड़ाते हैं महफिल में,
चीखती हुई आवाज,
मिलावटी शराब नहीं चाहिए।
और लाओ, बढ़िया से बढ़िया
अब डगमगाते पांव संभल नहीं पाते हैं।
वह गिर-गिर जाता है।
ऐसा लगता है
मौत उसके टखने खींच रही है,
घबराया हुआ बैरा चिल्लाता है—
शराबी बेहोश है हुजूर।
कहता है—शराब पुरानी है, उसमें बदबू है;
शराब की नई बोतल चाहिए

उससे ही उसकी उदर-पूर्ति होगी।
और वह बहरा, अंधा और गूंगा हो जाएगा।
बैरा कहता है—कोई बात नहीं, बिल में कसर निकलेगी
इस शराबी से; जो चाहूंगा, वही ले लूगा।
लेकिन चाय पीने से बुरी हालत
कभी नहीं होती।
चाय पीने से दुनिया भली लगने लगती है।
यह हमारी इन्द्रियों को कुंठित नहीं करती।
दुनिया घूमती हुई नज़र नहीं आती है।
हमारी इच्छा-शक्ति के पांव लड़खड़ाते नहीं।
ओ बीमार आत्माओ!
बिस्तर में पड़े-पड़े कब तक घुलती रहोगी!
सर उठाओ, देखो, सामने चाय उबल रही है।
एक घूट इस अमृत की ले लो;
इससे तुम्हारी सेहत और सूझ-बूझ का कायाकल्प हो जाएगा।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक चाय-पक्ष की विजय सम्पूर्ण हो गई। इगलैंड में चाय पीने का रिवाज जम गया।

ब्रिटिश म्यूज़ियम में सन् 1868 का एक दुर्लभ हस्तलेख है, उसमें चाय की प्रशंसा में लिखा हुआ है: "यह बिना वक्त आने वाली नींद को भगाती है, सिर में ठण्ड लग गई हो तो उसे दूर करती है और नज़र को तेज़ करती है।"

विलियम चतुर्थ के शासनकाल में दोपहर बाद चाय पीने का फैशन बेडफोर्ड की डचेस ने चलाया। दोपहर और सांझ के भोजनों के बीच जब दिल बैठता-सा था, तब उसके इलाज के लिए उसने चाय का प्रयोग किया था।

विश्वविख्यात लेखक जॉन रस्किन चाय को इतना पसन्द करते थे कि उन्होंने लंदन के पैडिंगटन स्ट्रीट में गरीबों के लिए चाय की एक दुकान खोली थी। लेकिन जैसे उनको अन्य बहुत-से

कामों में असफलता का मुंह देखना पड़ा था वैसे ही इस चाय की दुकान का अन्त हुआ।

डा० सैम्युअल जानसन अपनी चाय पीने की आदत का ज़िक्र करके बहुत खुश हुआ करते थे। वह अपने बारे में कहा करते थे कि मैं तो चाय के बिना रह नहीं सकता, मुझे तो आधी रात मे भी इसीसे आराम मिलता है, और मैं तो सुबह अपनी आंख चाय पीकर ही खोलता हूं।

विश्वविख्यात सेनानायक वैलिंगटन के ड्यूक जितनी भी लड़ाइयों में गए अपने साथ बोरियों में भरवाकर चाय ले गए। वे अपने फौजी अफसरों से कहा करते थे : "चाय से मेरा दिमाग ठीक तरह काम करता है।"

उन्नीसवीं शताब्दी में इंगलैंड में सभी लोग चाय का प्रयोग करने लगे। ब्रिटेन में चाय की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और चाय की प्रतिष्ठा निर्विवाद हो गई।

महारानी विक्टोरिया के प्रधानमंत्री ग्लैडस्टन अपने साथ हमेशा गरम चाय की बोतल रखा करते थे। वे उस बोतल से अपने पांवों को गरमाया करते थे, और रात में बीच-बीच में चाय की चुस्कियां लिया करते थे।

उन्होंने चाय की प्रशंसा में लिखा है : "अगर आपको ठण्ड लग रही है, तो चाय आपको गरमी पहुंचाएगी; अगर आपको गरमी सता रही है तो चाय आपको ठण्डक पहुंचाएगी। अगर आपका मन उदास है, तो चाय आपका चित्त प्रफुल्लित करेगी; अगर आप उद्विग्न है, तो चाय उस उद्विग्नता को शान्त कर देगी।"

चाय के एक शौकीन सिडनी स्मिथ कहा करते थे : "मैं तो ईश्वर को हज़ार धन्यवाद देता हूं कि उसने मुझे दुनिया मे चाय के रिवाज से पहले नहीं पैदा किया।"

लार्ड मौण्टबेटन कहते थे कि अगर कोई मुझसे पूछे कि पानी के अलावा आप दूसरा कौन-सा पेय चुनेंगे, और मुझसे ज़िन्दगी के बाकी दिनों के लिए केवल एक ही पेय चुनने को कहा जाए

तो मैं बिना मिशाक के चाय का वरण करूंगा। मैं चाय दिए बिन रह ही नहीं सकता। इगलैंड और अन्य देशों में चाय की मांग निरंतर वृद्धि होने के कारण भारत में चाय के उत्पादन लगातार प्रगति हुई है।

सन् 1900 में भारत में 767.25 लाख किलोग्राम चाय का उत्पादन हुआ, इसमें से 740.7 लाख किलोग्राम चाय विदेशों को भेजी गई। उस वर्ष इंगलैंड द्वारा भारत से मंगवाई गई चाय की मात्रा 693 लाख किलोग्राम थी। सन् 1905 तक स्थिति यह हो गई कि भारत 963 लाख किलोग्राम चाय का निर्यात करने लगा और चाय उत्पादक देशों में उसने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया।

आज भारत संसार में सबसे अधिक चाय का उत्पादन करता है। चाय उद्योग आज इतनी तरक्की कर गया है कि भारत के चाय बागानों में 10 लाख मजदूर काम करते हैं और भारतीय चाय का निर्यात ससार के अन्य देशों की तुलना में, श्रीलंका के अतिरिक्त, सबसे अधिक होता है। भारतीय चाय इंगलैण्ड, अमेरिका, रूस, मिस्र, पश्चिमी जर्मनी, स्वीडन, आस्ट्रेलिया, अफगानिस्तान तथा अन्य अनेक देशों द्वारा मंगाई जाती है।

2

भारत में चाय उद्योग

चीन की चाय के एकमात्र विक्रेता के पद से ईस्ट इंडिया कम्पनी के हट जानेपर उत्तर-पूर्वी भारत में चाय के पौधे की खोज प्रारम्भ हुई। ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में भारतीय पौधा मिला। उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदी की घाटियों में वैज्ञानिक ढंग से चाय के उत्पादन का कार्य आरम्भ हुआ और सिल्हट, दार्जिलिंग आदि क्षेत्रों में भी इसकी खेती होने लगी। चाय बागानों के कारण पहाड़ियों और वन-जातियों के इन क्षेत्रों की काफी उन्नति हुई। उत्तर-पूर्वी भारत का यह सारा क्षेत्र मोटे तौर से एक समत्रिभुज है, जिसके तीन कोने हैं: दार्जिलिंग यानी उत्तरी बंगाल, उत्तरी-पूर्व असम, और त्रिपुरा। इस त्रिभुज के पार्श्व भागों की लम्बाई लगभग 400 मील है। चाय उद्योग में इस क्षेत्र को दक्षिण भारत के नीलगिरि, अन्नामलाई और मुन्नार चाय क्षेत्र से और उत्तर भारत के रांची, देहरादून और कांगड़ा क्षेत्रों से अलग रखने के लिए उत्तर-पूर्वी भारत कहा जाता है। भारत में मुख्य रूप से इसी क्षेत्र में चाय का अधिकतम उत्पादन होता है। भारत में चाय उद्योग के विकास का अध्ययन करने के लिए ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदी की घाटियों की भूमि की संरचना के साथ-साथ वहां के भूगोल तथा जलवायु को समझना भी आवश्यक है। भारत में चाय उद्योग के प्रणेताओं ने उत्तर-पूर्वी भारत के इस क्षेत्र की भू-रचना और

तो मैं बिना झिझक के चाय का वरण करूंगा। मैं चाय पिए बिना रह ही नहीं सकता। इंगलैंड और अन्य देशों में चाय की मांग में निरंतर वृद्धि होने के कारण भारत में चाय के उत्पादन में लगातार प्रगति हुई है।

सन् 1900 में भारत में 767.25 लाख किलोग्राम चाय का उत्पादन हुआ, इसमें से 740.7 लाख किलोग्राम चाय विदेशों को भेजी गई। उस वर्ष इंगलैंड द्वारा भारत से मंगवाई गई चाय की मात्रा 693 लाख किलोग्राम थी। सन् 1905 तक स्थिति यह हो गई कि भारत 963 लाख किलोग्राम चाय का निर्यात करने लगा और चाय उत्पादक देशों में उसने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया।

आज भारत संसार में सबसे अधिक चाय का उत्पादन करता है। चाय उद्योग आज इतनी तरक्की कर गया है कि भारत के चाय बागानों में 10 लाख मजदूर काम करते हैं और भारतीय चाय का निर्यात संसार के अन्य देशों की तुलना में, श्रीलंका के अतिरिक्त, सबसे अधिक होता है। भारतीय चाय इंगलैण्ड, अमेरिका, रूस, मिस्र, पश्चिमी जर्मनी, स्वीडन, आस्ट्रेलिया, अफगानिस्तान तथा अन्य अनेक देशों द्वारा मंगाई जाती है।

2

भारत में चाय उद्योग

चीन की चाय के एकमात्र विक्रेता के पद से ईस्ट इंडिया कम्पनी के हट जानेपर उत्तर-पूर्वी भारत में चाय के पौधे की खोज प्रारम्भ हुई। ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में भारतीय पौधा मिला। उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदी का घाटियों में वैज्ञानिक ढंग से चाय के उत्पादन का कार्य आरम्भ हुआ और सिल्हट, दार्जिलिंग आदि क्षेत्रों में भी इसकी खेती होने लगी। चाय बागानों के कारण पहाड़ियों और वन-जातियों के इन क्षेत्रों की काफी उन्नति हुई। उत्तर-पूर्वी भारत का यह चाय क्षेत्र मोटे तौर से एक समत्रिभुज है, जिसके तीन कोने हैं: दार्जिलिंग यानी उत्तरी बंगाल, उत्तरी-पूर्व असम, और त्रिपुरा। इस त्रिभुज के पार्श्व भागों की लम्बाई लगभग 400 मील है। चाय उद्योग में इस क्षेत्र को दक्षिण भारत के नीलगिरि, अन्नामलाई और मुन्नार चाय क्षेत्र से और उत्तर भारत के रांची, देहरादून और कांगड़ा क्षेत्रों से अलग रखने के लिए उत्तर-पूर्वी भारत कहा जाता है। भारत में मुख्य रूप से इसी क्षेत्र में चाय का अधिकतम उत्पादन होता है। भारत में चाय उद्योग के विकास का अध्ययन करने के लिए ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदी की घाटियों की भूमि की संरचना के साथ-साथ वहां के भूगोल तथा जलवायु को समझना भी आवश्यक है। भारत में चाय उद्योग के प्रणेताओं ने उत्तर-पूर्वी भारत के इस क्षेत्र की भू-रचना और

जलवायु की बारीकियों को समझकर देश के लगभग समान परिस्थितियों वाले अन्य भागों में भी चाय उद्योग का विस्तार किया।

भूगोल तथा भूविज्ञान

उत्तर-पूर्वी भारत का यह चाय क्षेत्र ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदी सुरमा की घाटियों में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में चाय के पौधे या तो घाटी की चौरस भूमि पर, या पहाड़ों के निचले भाग पर लगाए जाते हैं। दार्जिलिंग ही एक मात्र ऐसा जिला है, जहां चाय के पौधे पहाड़ी ऊंचाइयों पर उगाए जाते हैं। ब्रह्मपुत्र घाटी लगभग 96 किलोमीटर चौड़ी है। इसके दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पर्वत हैं। इसके उत्तर में हिमालय पर्वत-श्रृङ्खला है। दक्षिण में बरेल पर्वतमाला है, जिसमें पटकोई, यानी नागा पर्वत और शिलांग पठार सम्मिलित हैं। सुरमा घाटी के उत्तर की ओर शिलांग पठार है और पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व में लुशाई पर्वत हैं। इन दोनों के पार्श्व में बंगाल की समतल भूमि है।

शिलांग पठार, जिसमें गारो, खासी जेंतिया और मिकिर पहाड़ियां सम्मिलित हैं, से उत्तर-पूर्वी भारत के भूवैज्ञानिक इतिहास का आरम्भ होता है। उत्तर-पूर्वी भारत की पर्वत-श्रृङ्खलाओं का अधिकतर भाग नाइस चट्टानों और मल से बना है। आदिकाल में शिलांग पठार अंशतः समुद्र में डूबा हुआ था और यह क्षेत्र, जिसे आज हम ब्रह्मपुत्र और सुरमा घाटी कहते हैं, पानी में स्थित था। फिर एक समय ऐसा भी आया जब यहां जंगल ही जंगल थे, या तलछटी मिट्टी भरी हुई थी। प्राचीन-काल के उन पेड़-पौधों ने अब कोयले की खानों का रूप ले लिया है, और वह तलछटी मिट्टी हमें शिलांग पठार के चेरा मिट्टी के पहाड़ों के रूप में दिखाई देती है।

भूवैज्ञानिक क्रिटेशस कल्प समाप्त होने पर एक नया युग

आरम्भ हुआ और भूमि संरचना में अनेकों परिवर्तन हुए। तिब्बत, जो पहले समुद्र के नीचे था, ऊपर उठ आया और उसका कंकड़-पत्थर से बना भाग बहकर उस स्थान पर एकत्र हो गया जिसे आज वर्मा कहा जाता है। उसके बाद हिमालय पर्वत-श्रृंखला की क्रिस्टली चट्टानों के अवशेष भी इस क्षेत्र में कहीं-कहीं दिखाई देते हैं।

नागा पहाड़िया, उत्तर कछार पहाड़ियां और लुशाई पर्वत भूवैज्ञानिक तृतीय महाकल्प के समय के रेतीले पहाड़ों से बने हुए हैं, ये उस समय, जब हिमालय पर्वत की क्रिस्टली ऊंची-ऊंची चट्टानें उभर रही थीं, समुद्र के तल से धीरे-धीरे ऊपर उभर आए थे।

इस चाय क्षेत्र को चार भागों में बांटा जाता है—ब्रह्मपुत्र घाटी, सुरमा घाटी, पश्चिम बंगाल का तराई क्षेत्र और दार्जिलिंग का जिला। सुरमा घाटी में कछार और सिल्हट के जिले हैं। सिल्हट क्षेत्र अब पूर्वी पाकिस्तान का भाग है। तराई क्षेत्र और दार्जिलिंग जिला पश्चिमी बंगाल में है और ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी असम प्रदेश में स्थित है।

यद्यपि ब्रह्मपुत्र घाटी के चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं, इस घाटी का लगभग सारा क्षेत्र समतल भूमि से बना है। सदिया समुद्र स्तर से 132 मीटर की ऊंचाई पर, डिब्रूगढ़ 102 मीटर पर और गोहाटी 49 मीटर पर स्थित है। हिमालय पर्वत श्रृंखला उत्तर की ओर ऊंची उठती चली गई है, कई स्थानों पर उसकी ऊंचाई 4,400 मीटर है, जहां बर्फ ही बर्फ छाई रहती है। दक्षिण की ओर नागा पर्वतश्रृंखला की औसत ऊंचाई लगभग 1,200 मीटर है, लेकिन कई स्थानों पर वह 2,700 मीटर भी है।

इस घाटी का मुख्य आकर्षण है ब्रह्मपुत्र, जिसे तिब्बत में सांगपो कहते हैं। असम के मैदानों में यह नदी दिहंग के दर्रे से होकर पहुंचती है। जब ब्रह्मपुत्र नदी असम के मैदान में पहुंच जाती है तो वह रेतीले किनारों के बीच विभिन्न धाराओं में

बहती हुई बाद में एक विशाल धारा का रूप ले लेती है। ब्रह
पुत्र का पानी तलछट से अटा रहता है और यह तलछट बह
हुई बंगाल के दक्षिणी भाग की ओर चली जाती है। जब ब्रह्मपु
में बाढ़ आती है तो उसके किनारों पर जमा होती हुई तलछ
सारी घाटी में दूर-दूर तक फैल जाती है।

डिब्रूगढ़ ब्रह्मपुत्र नदी के रेतीले किनारे पर बसा हुआ है
इसके आसपास समय-समय पर बाढ़ के कारण मिट्टी का कटा
होता रहता है। असम के दूसरे नगर जो इस नदी के किनारे प
ही बसे हुए हैं, तेजपुर, गोहाटी और दूबरी हैं। दूबरी ब्रह्मपुत्र
किनारे उस स्थान पर बसा हुआ है, जहां यह नदी तेजी से दक्षि
की ओर मुड़ती है। मानसून के दिनों में यह नदी धीरे-धीरे बहत
हुई एक झील की भांति दिखाई देती है, और कई स्थानों पर इ
का पाट 8 किलोमीटर तक चौड़ा हो जाता है।

ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदियां अपना-अपना स्थान बदलत
रहती हैं। बाढ़ के दिनों में यह दोनों नदियां असम के सारे मैदान
इलाके में फैल जाती हैं और एक-दूसरे के स्थान पर आधिपत
करती रहती है। भूगोलशास्त्रियों की दृष्टि में यह एक रोचक
विषय है, जो नदियों की डाकाजनी के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्म
पुत्र नदी के दोनों ओर लगभग 11 किलोमीटर तक फैला हुआ
ऐसा क्षेत्र है, जो प्रति वर्ष बाढ़ में डूब जाता है। इस क्षेत्र मे
घना जंगल है, और यहां गर्मियों में धान और दाल की मामूली
फसलों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। बाढ़ का पानी घट
जाने पर, पानी में डूबी हुई धरती नदी की कछार हो जाती है,
उसमें कई तरह की घासें उग आती हैं, और यहां चरागाहें बन
जाते हैं। घाटी के अन्य क्षेत्रों में गांव बसे हुए हैं, यहां चाय या
धान आदि की खेती की जाती है।

ब्रह्मपुत्र या असम घाटी के लखीमपुर, शिवसागर और
दरांग ज़िलों में जिनमें से अंतिम ज़िला ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी

सुरमा घाटी में चाय की कृषि के 4 क्षेत्र हैं : कछार, सिल्हट, चटगांव तथा त्रिपुरा। इनमें से सिल्हट और चटगांव इस समय पूर्वी पाकिस्तान के भाग हैं। चाय की उपज की दृष्टि से सुरमा घाटी की भूमि काफी उपजाऊ है।

ब्रह्मपुत्र घाटी और सुरमा घाटी के अतिरिक्त उत्तर-पूर्वी भारत में दार्जिलिंग के चारों ओर लगभग 50 वर्ग किलोमीटर के इलाके में चाय की उपज होती है। यह नगर 2,100 मीटर की ऊंचाई पर बसा हुआ है और यहां से भूटान, तिब्बत और नेपाल की हिमालय पर्वतशृङ्खला की ऊंची-ऊंची चोटियां, जिनमें कंचनजंघा सबसे प्रसिद्ध है, बड़ी नज़दीक दिखाई देती हैं। दार्जिलिंग में लगभग 16,800 हेक्टर भूमि मे चाय बोई जाती है।

उत्तर-पूर्वी भारत की जलवायु

चाय क्षेत्रीय उत्तर-पूर्वी भारत में वर्ष को 3 भागों में बांटा जा सकता है। *शरद ऋतु, नवम्बर से फरवरी तक; ग्रीष्म ऋतु,* मार्च से जून तक, और जून से अक्तूबर तक के मौसम में गर्मी तथा आर्द्रता रहती है, इसे मोटे तौर पर वर्षा ऋतु कहा जाता है। भारत में असम ऐसा प्रदेश है जहां सारे देश की तुलना में वर्षा अधिक मात्रा में होती है, मानसूनी महीनों, यानी जून से सितम्बर तक यहां प्रायः प्रतिदिन वर्षा होती है। चेरापूंजी, जहां ससार में सबसे अधिक वर्षा होती है, भारत के इसी क्षेत्र में स्थित है। उत्तर-पूर्वी भारत की वार्षिक औसत वर्षा 250 सेंटीमीटर है। कई स्थानों पर जो प्रायः मिकिर पर्वत में है, वर्षा का औसत 100 सेंटीमीटर है। चेरापूंजी में जो शिलांग पठार पर 1,200 मीटर की ऊंचाई पर है वार्षिक वर्षा औसतन 952.5 सेंटीमीटर रहती है। यहां का अधिकतम रिकार्ड 2262.5 सेंटीमीटर है।

उत्तर-पूर्वी भारत की स्थिति को देखते हुए चाय की खेती के लिए कम से कम वार्षिक वर्षा 150 सेंटीमीटर होनी चाहिए

और यदि 200 सेंटीमीटर हो जाए तो काफी लाभदायक रहती है। नीचे प्रस्तुत की गई सारणी में उत्तर-पूर्वी भारत के विभिन्न क्षेत्रों के 4 स्थानों में होनेवाली वर्षा का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर-पूर्वी भारत में मासिक वर्षा का विवरण
(सेंटीमीटरों में)

महीना	टुमटुमा, असम	कछार	माल, पश्चिमी बंगाल	दार्जिलिंग
जनवरी	3.75	1.50	1.25	2.00
फरवरी	7.00	5.75	1.75	2.75
मार्च	14.30	20.00	2.75	5.00
अप्रैल	25.17	34.00	10.00	10.25
मई	25.15	39.25	27.75	19.50
जून	39.50	51.00	83.50	60.50
जुलाई	49.00	50.00	111.25	79.25
अगस्त	40.75	46.75	70.50	65.00
सितम्बर	26.50	35.00	71.75	45.75
अक्तूबर	11.25	16.00	18.75	13.50
नवम्बर	1.50	3.25	2.50	0.50
दिसम्बर	1.00	1.25	0.50	0.50
योग	244.87	303.75	402.25	304.50

असम के चाय क्षेत्र में कुहरा बहुत ही कम होता है जबकि यह पश्चिमी बंगाल के तराई क्षेत्रों में कई बार दिखाई देता है। मार्च-अप्रैल और मई के महीनों को छोड़कर अन्य महीनों में उत्तर-पूर्वी भारत का मौसम हर रात आर्द्रता से भरा रहता है और प्रायः प्रातः 8 बजे सापेक्ष आर्द्रता 90 प्रतिशत रहती है। ...ने दिन चढ़ता है, यह कम होकर 60 प्रतिशत रह

सरदी के मौसम में जब ठंडी हवा तेजी से चलती है तो वह प्रायः उत्तर-पूर्व की ओर से आती है। मानसूनी महीनों में हवा दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम की ओर से आती है। वर्षा के आरम्भ के महीनों में भी काफी तेज हवा चलती है। मार्च-अप्रैल और मई के महीनों में भीषण आंधी आती है और कई बार ओले भी पड़ते हैं। आंधी और ओले चाय बागानों की नई-नई पत्तियों पर प्रहार करके उन्हें अत्यधिक हानि पहुंचा सकते हैं। इन दिनों गिरनेवाले ओले आकार में काफी बड़े होते हैं और उनकी मोटाई कभी-कभी 2.5 सेंटीमीटर तक होती है। ये इतनी तेजी से गिरते हैं कि चाय के पौधों की शाखाओं तक के टूटने का डर रहता है। इन दिनों चाय-बागानों को इस तरह के खतरों से बचाए रखने के लिए कई प्रकार के उपाय किए जाते हैं। इस तरह टूट जाने वाली चाय की पत्तियों और पौधों के उपयोग के लिए अब कई तरीके ढूंढ लिए गए हैं।

वायु का तापमान धूप पर निर्भर करता है, और इसके साथ ही विनाशकारी कीट और चाय-बागान में फैलनेवाले रोग भी धूप की मात्रा पर निर्भर करते हैं। असम की घाटी में धूप प्रतिदिन प्रायः 6 घंटे निकलती है। किन्तु सितम्बर के महीने में वह लगभग 4 घंटे ही रहती है। पश्चिमी बंगाल के चाय-क्षेत्रों में भी, मानसून के महीनों में धूप अन्य क्षेत्रों की तुलना में कुछ कम निकलती है। किन्तु इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

उत्तर-पूर्वी भारत की जलवायु, वहां की धूप, वर्षा, आर्द्रता तथा शीत को ध्यान में रखते हुए, चाय की उपज के लिए अत्यधिक उपयुक्त है। इसीलिए भारत में ही नहीं, वरन् संसार के चाय क्षेत्रों की तुलना में इस क्षेत्र में चाय के बागान अधिक हैं। यहां की चाय संसार की श्रेष्ठतम चाय से मुकाबला कर सकती है। इसीलिए उसकी मांग भी अन्य चायों की तुलना में अधिक है।

भारत के चाय उद्योग के विकास का इतिहास पिछले सौ

पर्वों में फैला हुआ है, और उसका निर्माण-क्षेत्र मुख्यतः उत्तर-पूर्वी भारत ही रहा है।

उत्तर-पूर्वी भारत में चाय उद्योग की व्यवस्था

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्तर-पूर्वी भारत में कुछ व्यक्तियों या परिवारों द्वारा चाय-बागान लगाए गए। ये लोग प्रायः अंग्रेज थे। इन चाय-बागानों के काम को भली प्रकार सम्भालने के लिए यह अपेक्षित था कि भारत में चाय-बागानों के मालिकों का कोई न कोई प्रतिनिधि अवश्य रहे। उन दिनों इंगलैण्ड से भारत आने में काफी समय लगता था। लगभग सभी चाय-बागानों के मालिकों के एजेण्ट कलकत्ता में रहते थे, और वे ही चाय-बागानों के प्रबन्ध को संभालते थे।

सन् 1881 में कलकत्ता स्थित एजेंसियों की एक बैठक में इंडियन टी एसोसिएशन बनाने का निर्णय किया गया, उद्देश्य यह था कि भारत में चाय-उत्पादन से सम्बद्ध सभी व्यक्ति चाय के विकास में अपना-अपना सहयोग भली प्रकार प्रस्तुत कर सकें। इस एसोसिएशन से सम्बद्ध सदस्य चाय-बागानों की 41,200 हेक्टर भूमि का प्रतिनिधित्व करते थे। इस क्षेत्र में लगातार वृद्धि होती रही। सन् 1925 में यह क्षेत्र 2 लाख हेक्टर से भी अधिक हो गया था।

चाय-बागानों के भारतीय मालिकों ने भी इंडियन टी प्लांटर्स एसोसिएशन की स्थापना की। इसका प्रधान कार्यालय जलपाइ-गुड़ी में बनाया गया। यह एसोसिएशन भी पहली एसोसिएशन को सहयोग देती रही है। कालान्तर में अन्य भारतीय चाय मालिकों ने टी एसोसियेशन आफ इण्डिया और भारतीय चाय परिषद नामक संस्थाओं को जन्म दिया। ये संस्थाएं श्रमिकों की भर्ती, देशी तथा विदेशी बाजारों में चाय के प्रचार, और चाय के [illegible] को नियंत्रित रखने, तथा मांग के अनुसार संभरण को [illegible]लित बनाए रखने सम्बन्धी कार्य करने के साथ, चाय के

विकास के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान सम्बन्धी व्यवस्था भी करती रही हैं।

सन् 1915 में सरकार ने ठेकेदारों द्वारा चाय-बागानों के लिए मजदूरों की भर्ती करने की प्रथा को समाप्त करते हुए असम श्रमिक मंडल की स्थापना की। सन् 1917 में श्रमिकों को उपलब्ध करनेवाली विभिन्न संस्थाओं को मिलाकर 'टी-डिस्ट्रिक्ट्स लेबर एसोसिएशन' बनाई गई।

सन् 1893 से इंडियन टी एसोसिएशन ने विदेशी बाजारों में *भारतीय चाय के क्षेत्र को विकसित करने से सम्बन्धित व्यय* का अनुमान लगाया। इस उद्देश्य के लिए एसोसिएशन ने धीरे-धीरे धन भी एकत्र करना आरम्भ कर दिया; लेकिन कुछ सदस्यों ने इसका विरोध किया। अन्ततः सन् 1903 में इंडियन टी एसोसिएशन ने एक ऐसा अधिनियम पारित कराया जिसके अनुसार निर्यात होनेवाली भारतीय चाय पर 1/768 रुपया प्रति 450ग्राम निर्यात शुल्क वसूल किया जाने लगा। सन् 1923 में यह दर बढ़ा कर 45 किलोग्राम पर 0.25 रुपये कर दी गई। सन् 1933 में यह दर 0.50 रुपये थी। ... शुल्क 45 किलो-
...म पर 4 रुपये था
इस प्रकार एकत्र
...य को ... भाग भारतीय
क्षेत्रों के साथ-साथ,
खर्च किया जाता रहा
...ने से पूर्व, यानी सन्
... 81 लाख किलोग्राम
... 225 लाख किलोग्राम
किलोग्राम से भी अधिक

आपसी सहयोग का निश्चय किया; और तीनों देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय चाय विनियम योजना के प्रति सहमति प्रकट की। इस योजना के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय चाय बाजार विस्तारमंडल ने चाय के प्रचार का कार्य संभाला। इस मंडल ने चाय की खपत को बढ़ाने के लिए काफी कार्य किया है।

चाय के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अनुसंधान करने के लिए सन् 1900 में इंडियन टी एसोसिएशन ने कलकत्ता में एक प्रयोगशाला आरम्भ की। इसके बाद 1911 में जोरहाट के समीप टोकलाई में भी एक प्रयोगशाला ने काम आरम्भ किया। इसमें धीरे-धीरे काफी विस्तार हुआ। इन प्रयोगशालाओं का कार्य एक वैज्ञानिक विभाग सभालता था, जिसके लिए धन की व्यवस्था एसोसिएशन अपने सदस्यों से चाय-बागान के भूमि-एकड़ों के आधार पर चंदा लेकर करती थी।

इंडियन टी एसोसिएशन और इंडियन टी प्लांटर्स एसोसिएशन तथा टी एसोसिएशन आफ इण्डिया (भारतीय चाय परिषद) ने उत्तरी भारत में, और उपासी ने दक्षिण भारत में भारतीय चाय को एक सुसंगठित उद्योग का रूप देने में काफी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तो भारत सरकार भी सदैव इस बात का प्रयत्न करती रही है कि भारत में चाय उद्योग का बहुमुखी विकास हो, और यह उद्योग भारत के लिए अधिकाधिक विदेशी मुद्रा अर्जित करे।

भारतीय चाय उद्योग—अन्य क्षेत्रों में

उत्तर-पूर्वी भारत स्थित असम घाटी, कछार, दार्जिलिंग आदि क्षेत्रों के अतिरिक्त निम्नलिखित क्षेत्रों में भी चाय-बागान मौजूद हैं :

(1) दक्षिण भारत में—मैसूर, नीलगिरि, अन्नामले और केरल में

(2) बिहार में—रांची में

(3) उत्तर भारत में—देहरादून, कांगड़ा, मण्डी, जम्मू, अलमोड़ा आदि में।

दक्षिण भारत चाय-क्षेत्र

चाय उद्योग की दृष्टि से दक्षिण भारत को आज महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, यद्यपि आरम्भ में यहां प्रयोगात्मक दृष्टि से ही चाय के पौधे लगाए गए थे। सन् 1834 में लार्ड विलियम बैंटिक ने चीन की चाय के पौधे नीलगिरि में लगवाए थे। 1853 तक यह सिद्ध हो गया था कि नीलगिरि क्षेत्र जलवायु और भूमि की दृष्टि से चाय-बागानों के लिए उपयुक्त है, पर यहां उद्योग का सूत्रपात वास्तविक अर्थों में 1893 में हुआ। इसी वर्ष चाय, रबड़, काफी आदि के सम्बन्ध में सुव्यवस्थित तथा संगठित ढग से कार्य करने के लिए युनाइटिड प्लांटर्स एसोसिएशन आफ सदर्न इंडिया बनाया गया। इस एसोसिएशन की ओर से 1926 में चाय विज्ञान विभाग की स्थापना नीलगिरि क्षेत्र में देवारशोल नामक स्थान पर की गई। सन् 1951 में दक्षिण भारत के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त चाय की कोचीन में जो नीलामी हुई थी उसमें 90 लाख किलोग्राम चाय बेची गई थी।

दक्षिण भारत के चाय-बागान लगभग 69,200 हेक्टर भूमि में फैले हुए हैं। इनका वितरण निम्न प्रकार है —

	मैसूर तथा कुर्ग	1,699.2	हेक्टर
	वैनाड	5,707.6	,,
तमिलनाडु	नीलगिरि-वैनाड	5,627.6	,,
	नीलगिरि	11,326.8	,,
	अन्नामलै	10,810.4	,,
	केरल	33,931.6	,,
		योग 69,103.2	,,

भारतीय चाय-बागानों के कुल क्षेत्र का पांचवां भाग दक्षिण भारत में स्थित है। यहां प्रति हैक्टर औसत उपज 787.5 किलोग्राम है जबकि उत्तर-पूर्वी भारत की प्रति हैक्टर औसत उपज 900 किलोग्राम है। दक्षिण भारत की चाय की गुणवत्ता प्रायः उत्तम है। अन्नामलै क्षेत्र की चाय संसार की अच्छी से अच्छी चाय का मुकाबला कर सकती है।

दक्षिण भारत का चाय उद्योग काफी सुव्यवस्थित है। चाय की फैक्टरियों में आधुनिक उपकरण प्रयोग किए जाते हैं। कुछ फैक्टरियों में चाय-निर्माण प्रक्रिया में बिजली का उपयोग भी किया जाता है।

दक्षिण भारत में चाय उद्योग के विस्तार की पर्याप्त संभावनाएं हैं। आज भी वहां चाय-बागानों को विस्तृत करने और नए चाय-बागान लगाने के लिए काफी भूमि उपलब्ध है। भारतीय चाय बोर्ड इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि दक्षिण भारत के चाय-उद्योग को हर प्रकार की सुविधाएं दी जाएं, जिससे कि आगामी वर्षों में यह उद्योग वहां अधिकाधिक उन्नति कर सके।

बिहार चाय-क्षेत्र

कलकत्ता से पश्चिम की ओर छोटा नागपुर पठार पर रांची (बिहार प्रदेश) में स्थित है। यहां लगभग 800 हेक्टर भूमि पर चाय की खेती होती है। चाय की औसत उपज 90 किलोग्राम प्रति हेक्टर से भी कम है। थोड़ी-सी भूमि ऐसी भी है जहां औसत उपज 180 किलोग्राम प्रति हेक्टर है। चाय के पौधों की हर तीसरे वर्ष मई मास के मध्य में छंटाई की जाती है। उस वर्ष अक्तूबर मास के बाद ही लगभग 45 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से चाय की उपज होती है। दूसरे वर्ष में बिना छंटाई किए पौधों से लगभग 450 किलोग्राम चाय प्रति हेक्टर पैदा होती है। पर इसके लिए पर्याप्त वर्षा का होना आवश्यक है। तीसरे वर्ष उपज बिना छंटाई किए पौधों से लगभग 281 किलोग्राम प्रति हेक्टर

होती है। विगत सालों में गहन औद्योगीकरण के कारण रांची क्षेत्र में चाय-बागानों का भविष्य कुछ संदिग्ध जान पड़ता है।

रांची की चाय बिकने के लिए कलकत्ता जाती है।

उत्तर भारत चाय-क्षेत्र

देहरादून—बंगाल की खाड़ी से लगभग 1,280 किलोमीटर की दूरी पर उत्तर प्रदेश में देहरादून चाय-क्षेत्र स्थित है। अरब सागर से भी इस क्षेत्र का फासला लगभग 1,280 किलोमीटर है। यहां वर्षा पूर्वी और पश्चिमी मानसूनों के कारण होती है। इस घाटी में औसतन 187.5 सेंटीमीटर वर्षा होती है।

चाय उद्योग के विकास में देहरादून का ऐतिहासिक महत्त्व है। सन् 1833 में भारत के गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त समिति की सलाह के अनुसार 1840 में सरकार की ओर से देहरादून के समीप कौलागढ़ में चाय के पौधे लगाए गए थे।

यहां लगभग 2,500 हेक्टर भूमि का उपयोग चाय-बागानों के लिए किया जा रहा है। दून घाटी में समतल भूमि पर चाय के पौधे लगे हुए हैं, इनपर शीशम के पेड़ों की छाया रहती है। चाय की औसत उपज 562.5 किलोग्राम प्रति हेक्टर है। यहां प्रायः हरी चाय तैयार की जाती है।

देहरादून की चाय प्रायः अमृतसर, जहां उत्तर-पश्चिम भारत का चाय-बाजार स्थित है, पहुंचती है। वहां पत्तियों को ग्रेडों के अनुसार अलग-अलग करके उनकी पैकिंग की जाती है। विगत वर्षों में देहरादून के चाय उद्योग ने कोई उन्नति नहीं की है।

कांगड़ा—देहरादून से 320 किलोमीटर दूर कांगड़ा घाटी हिमाचल प्रदेश में स्थित है। यह क्षेत्र पठानकोट से 112 किलोमीटर दूर पालमपुर के आसपास फैला हुआ है। यहां औसतन 250 सेंटीमीटर वर्षा होती है।

यहां चाय की खेती 1860 में आरम्भ हुई थी। उन्नीसवीं

शताब्दी के अन्त तक उसमें कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इस क्षेत्र में भूचाल आया। इस कारण चाय-बागानों के अंग्रेज मालिकों की इस क्षेत्र में अरुचि हो गई। फिर भी यहां चाय-बागानों का कार्य जैसे-तैसे चलता रहा।

आजकल इस क्षेत्र में चाय उद्योग की उन्नति के लिए हिमाचल प्रदेश की सरकार और भारतीय चाय बोर्ड विशेष रूप से ध्यान दे रहे हैं।

यहां चाय-बागानों का क्षेत्र लगभग 4,000 हेक्टर है। यहां की चाय प्रायः हरी होती है। पत्तियों को लोहे की कड़ाहियों में गरम करके, अगली निर्माण-प्रक्रिया के लिए अमृतसर भेजा जाता है।

3

चाय की खेती

चाय की खेती आरम्भ करने से पहले मुख्यतया तीन बातों को ध्यान मे रखा जाता है। सबसे पहले यह पता लगाया जाता है कि खेती की भूमि और क्षेत्र की जलवायु चाय के पौधे के लिए उपयुक्त है या नहीं। इसके बाद जो बात ध्यान में रखी जाती है, वह यह है कि क्या उस स्थान पर पर्याप्त संख्या में श्रमिक उपलब्ध हो सकते हैं ? इसका कारण यह है कि चाय के पौधे का पालन-पोषण करने के लिए मनुष्य की उंगलियों की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

चाय की पत्तियों के उत्पादन के लिए भारत मे 10 लाख से भी अधिक श्रमिक काम करते हैं। ये श्रमिक चाय-निर्माण फैक्टरियों मे ही काम करते हो, ऐसा नहीं है। वे प्रचुर संख्या में चाय-बागानों मे काम करते हैं। चाय-निर्माण-प्रक्रिया के सिलसिले में चाय की रोलिंग, आक्सीकरण, पत्तियों को सुखाने आदि कार्यों के लिए मशीनों का उपयोग किया जाने लगा है, पर चाय के पौधों की सहेज-सभाल केवल मनुष्य के हाथों से की जाती है। ये श्रमिक चाय के पौधों के लिए उपयुक्त ढंग से भूमि साफ करने, बीज लगाने, पौधों के पालन-पोषण, पौधों की छंटाई, पत्तियां तोड़ने, खाद देने और कीटों तथा रोगों से पौधों को सुरक्षित रखने आदि के कार्य करते हैं।

भूमि की व्यवस्था

जब चाय-विशेषज्ञों द्वारा यह निर्णय कर लिया जाता है कि अमुक भूमि पर—जहां का जलवायु चाय के लिए उपयुक्त है और जहां श्रमिकों को प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होगी—चाय की खेती की जानी है तो तब सबसे पहला काम होता है भू-व्यवस्था।

भू-व्यवस्था से संबंधित कार्य में सबसे पहले उस स्थान पर श्रमिकों के लिए उचित निवास बनाए जाते हैं। फिर जंगल साफ किए जाते हैं। पहले पेड़ों को काटकर वहीं जला दिया जाता था। बाद में उन्हें अन्य उपयोगों के लिए दूसरे स्थानों पर ले जाया जाने लगा। वृक्षों के स्थान पर यदि घास साफ करनी होती है तो उसे निकालकर वहीं जड़ समेत जला दिया जाता है।

भू-व्यवस्था में अधिक उपज लेने और चाय के पौधों को दीर्घकाल तक जीवित रखने के लिए निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं—

(1) भूमि-आमोटन को स्थिर रखना तथा उसमें वृद्धि करना
(2) उत्तम जुताई
(3) भू-क्षरण से सुरक्षा
(4) जल-निकास की उचित व्यवस्था

मिट्टी का आमोटन

भूमि के आमोटन को स्थिर रखना अत्यावश्यक है। पौधा पोषक तत्त्वों को द्रव होने पर ही ग्रहण करता है। इसलिए उसके आस-पास की मिट्टी में नमी होनी चाहिए; और यह तभी संभव है जब मिट्टी के कण समुचित लघु आकार के हों। उत्तम जुताई और जैव खाद (गोबर, खली, हरी खाद आदि) से भूमि के आमोटन में वृद्धि होती है।

नर्सरी—तैयार की हुई जमीन में बीज फैलाते हुए

उत्तम जुताई

उत्तम जुताई भूमि को अधिक उपजाऊ बनाती है। समतल भूमि में वर्ष में एक बार हल्की खुदाई की जा सकती है। भारी मिट्टी के कण एक दूसरे से जुड़कर सख्त हो जाते हैं। उसमें गहरी खुदाई लाभकर होती है। साधारणतया गोडाई ही पर्याप्त होती है। गोडाई के समय पौधों के थामलों में और मिट्टी लगानी चाहिए। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि पौधे के आसपास घास-फूस अधिक मात्रा में जमा न होने पाएं। इससे पानी का निकास रुक जाता है।

अक्तूबर-नवम्बर के पश्चात् जुताई पर निराई नहीं करनी चाहिए। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि घास-फूस को उलट-पलट अपेक्षित मात्रा से अधिक की जाती है तो इससे उपज को क्षति पहुंचती है। सूखे और वर्षा के दिनों में भूमि घास-फूस रहित रहनी चाहिए। कटी हुई घास को भूमि पर फैला देने से

भू-क्षरण को रोकने तथा अनावृष्टि के समय भूमि को आर्द्र रखने में सहायता मिलती है।

भू-क्षरण से सुरक्षा

भूमि को क्षरण से बचाने के उद्देश्य से उत्तम जुताई लाभदायक सिद्ध होती है। भू-क्षरण उस स्थान पर नहीं होता, जहां मिट्टी वनस्पति से ढकी रहती है, और मिट्टी को बहने से रोकने के लिए उसमें पानी को रोकने की क्षमता में अपेक्षित मात्रा तक वृद्धि कर दी जाती है। पौधे के आसपास कीचड़ हो जाए तो यह भू-क्षरण का लक्षण होता है। 4.5-4.8 मीटर की दूरी पर भूमि के नीचे-नीचे बनी नालिया भू-क्षरण को रोकने में सहायता करती हैं।

जल और वायु दोनों से भू-क्षरण होने की संभावना बनी रहती है। जल के माध्यम से भू-क्षरण में जो तत्व कार्य करते हैं, वे निम्नलिखित हैं —

(1) यदि दस मिनट में दस सेंटीमीटर या अधिक वर्षा हो जाती है तो भू-क्षरण होने लगता है।
(2) भूमि का ढलान
(3) भूमि की किस्म
(4) पौधों के बढ़ने की गति

भू-क्षरण रोकने की समस्त विधियों का लक्ष्य इन कारणों में से किसी का निराकरण करना, नियन्त्रित करना, तथा भूमि को सुरक्षित रखना होता है।

जल-निकास की उचित व्यवस्था

चाय का नया बागान लगाने के लिए बीजारोपण से पूर्व उस स्थल पर ढलान और नालियों आदि की उचित व्यवस्था करना आवश्यक होता है। चाय का पौधा इतना कोमल होता है कि वह न तो अधिक जल सहन कर पाता है और न जल की कमी ही

चाय के पौधे की देखभाल

उससे सहन होती है। इसलिए उसके वास्ते नियंत्रित जल की आवश्यकता होती है।

चाय की खेती आरम्भ करने से पहले योग्य सर्वेक्षक भूमि का सर्वेक्षण करता है। जल का निकास बनाए रखने के लिए नालियों के बीच की दूरी वर्षा की मात्रा और भूमि की किस्म पर निर्भर होती है। रेतीली मिट्टी में 15-24 मीटर और चिकनी मिट्टी में 6-12 मीटर के अंतर से मोरियां बनानी चाहिए। जल-निकास के लिए पर्याप्त संख्या में ऊपर मुहाने होने चाहिए। सुव्यवस्थित जल-निकास का उद्देश्य यह होता है कि न तो जल का निकास इतना अधिक और तेजी से हो कि भूमि की नमीं सूख जाए, और न पानी इतना जमा हो कि पौधों को हानि पहुंचे। उत्तम जल-निकास व्यवस्था का पौधे के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। जल-निकास व्यवस्था मानसून में अधिक

वर्षा से पौधों की रक्षा करती है और भूमि के ऊपर के पानी को अपने नियंत्रण में ले लेती है।

साधारणतः जल का प्रवाह उत्तर से दक्षिण को होता है। अतः मुख्य मोरी उत्तर से दक्षिण को बनानी चाहिए और सहायक मोरियां पूर्व से पश्चिम को होनी चाहिए। मुख्य मोरी इतनी बड़ी होनी चाहिए कि वह सहायक मोरियों से पर्याप्त जल वहा ले जा सके; तथा उसका इतना गहरा और चौड़ा होना भी आवश्यक है कि वह भूमि के नीचे पानी को संभालते हुए सहायक मोरियों को पानी देती रहे। सहायक मोरियां पर्याप्त गहरी होनी चाहिए, किन्तु उनका अधिक चौड़ा होना अपेक्षित नहीं है। मोरियों के ढलान के सम्बन्ध में यह मान्यता है कि मिट्टी जितनी भारी हो मोरी उतनी ही ढलवां, और मिट्टी जितनी हल्की हो, मोरी उतनी ही कम ढलवां होनी चाहिए।

जल के आधिक्य से चाय के पौधों का सुरक्षित रखना बहुत आवश्यक है। जल की व्यवस्था वर्षा की बारम्बारता, अवधि, गहनता और भूमि पर निर्भर होती है। भारी वर्षा के कारण उत्तर-पूर्वी भारत में अतिरिक्त जल से निपटने के लिए जल-निकास व्यवस्था अत्यन्त जरूरी पाई गई है।

एक समय ऐसा भी था जब उत्तर-पूर्वी भारत के चाय-बागानों में 0.9 मीटर गहरी मोरियां 12-12 मीटर की दूरी पर खोदना अनिवार्य माना जाता था, फिर एक समय आया जब मोरियों का प्रयोग पूर्णतया बन्द हो गया। आजकल चाय-बागानों में जल-निकास व्यवस्था को सुनियंत्रित बनाने के लिए फिर मोरियों का प्रयोग आरम्भ हो गया है।

चाय के बीज

चाय-बागानों में चाय के बीज तैयार करने के लिए 4 से 20 हेक्टर भूमि में अलग से पौधे लगाए जाते हैं, और इन पौधों की देख-भाल दूसरे ही ढंग से की जाती है। बीज तैयार करने के

लिए पौधों के बीच का फासला 4.5 से 5.4 मीटर तक रखना चाहिए और इन पौधों की छंटाई नहीं करनी चाहिए। अगर टहनियां झुककर भूमि को छूने लगें तो उनको थोड़ा-सा काट देना चाहिए। इन पौधों के पास पानी नहीं रुकना चाहिए। पौधों से बीज तोड़ने के बजाए उन्हें भूमि पर गिरने के बाद ही उठाना अच्छा होता है।

चाय के पौधों की आयु

आज भारत में लगभग साढे आठ हज़ार चाय के बागान हैं। इन चाय-बागानों के पालन में यह देखना भी आवश्यक होता है कि जो पौधे निर्जीव हो गए हैं, उनके स्थान पर नए पौधे लगाए जाएं। चाय के पौधे की आयु काफी लम्बी होती है। यदि कोई विशेष कारण न हो तो पहले दस वर्षों में चाय के पौधों के निर्जीव होने की संभावना प्रायः नहीं के बराबर होती है। अगले दस वर्षों में भी कुछ पौधे ही निर्जीव होते हैं, किन्तु बीस और तीस साल के बीच अनेक पौधे निर्जीव हो जाते हैं। चाय के पौधों की आर्थिक दृष्टि से लाभकारी आयु प्रायः पचास-पचपन वर्ष है, यद्यपि कुछ बागानों में 100 वर्ष पुराने पौधे भी पाए जाते हैं।

पौधों की छंटाई

असम में चाय के पौधों की छंटाई के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पहली बार सन् 1920 में अपनाया गया; और उसके बाद अधिक उपज की दृष्टि से इसका विकास हुआ। पहले भी जब कोई पौधा दुर्बल दिखाई देता था तो उसकी छंटाई अधिक कर दी जाती थी।

सन् 1860 में छंटाई का अर्थ था पौधों के बीच में से सूखी टहनियां निकाल देना और जब-तब कैंचियों से पौधों को यहां-वहां से काट देना। सन् 1870 में छंटाई के लिए चाकू और आरी का उपयोग किया जाने लगा। सन् 1900 में छंटाई को गलत

माना जाने लगा और यह विचार कई वर्षों तक चलता रहा। किन्तु अब इस बात में कोई संदेह नहीं है कि चाय के पौधे के विकास के लिए उसकी छंटाई करना उतना ही आवश्यक है जितना कि उसे खाद देना।

चाय का पौधा नवम्बर में लगाने के बाद एक वर्ष में लगभग 45 सेंटीमीटर ऊंचा हो जाता है और तब उसकी छटाई की जाती है। इसके बाद पौधा जून के महीने तक बढ़कर 75 से 90 सेंटीमीटर तक पहुंच जाता है। पत्तियां प्रायः इन्हीं दिनों तोड़ी जाती है। हैं। अगले वर्ष पौधे की छंटाई नहीं की जाती; उसकी पत्तियां ही तोड़ी जाती हैं। इसके बाद पौधे की चोटी की छंटाई की जाती 25 वर्ष की आयु में पौधे की ऊंचाई इतनी हो जाती है कि उसकी पत्तियां तोड़ना कठिन हो जाता है। तब इन पौधों की छटाई की जाती है। इस छटाई के बाद पौधों की ऊंचाई 60 से 70 सेंटीमीटर तक रखी जाती है और ये पौधे प्रति वर्ष लगभग चार सेंटीमीटर बढ़ते हैं। लगभग 40 वर्ष बाद उसी भूमि पर चाय के नये पौधे लगाए जाते हैं। नवम्बर और दिसम्बर के महीने छंटाई की दृष्टि से सर्वोत्तम होते हैं। इसके बाद छटाई करने से फसल को हानि पहुंचने का भय रहता है।

असम में प्रति वर्ष और दूसरे वर्ष छटाई के कारण चाय की उपज में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। चाय के पौधों की प्रति वर्ष छटाई न करने से एक लाभ यह होता है कि चाय-बागान में कम श्रमिकों से भी काम चल जाता है, और छटाई के काम को हिस्सों में बांटकर किया जा सकता है। छटाई न करने से पौधों में पत्तियां जल्दी आती हैं, किन्तु ये पत्तियां शीघ्र समाप्त भी हो जाती हैं। चाय के पौधों की उपज बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी छटाई हल्की-हल्की की जाए।

चाय के नये पौधों के भली प्रकार विकास के लिए छंटाई करने, पत्तियां तोड़ने और पर्याप्त खाद देने से सम्बन्धित विवरण आगे प्रस्तुत है—

चाय के पौधों की छटाई

वर्ष	क्रिया	खाद प्रति हेक्टर	उपज प्रति हेक्टर
पहला	नर्सरी, नवम्बर से नवम्बर तक,	द्रव खाद	कुछ नहीं
दूसरा	पौधा, नवम्बर में,	11.25 कि० ग्रा० गोबर आदि की खाद एक पौधे के लिए	" "
तीसरा	45 सें० मी० की ऊंचाई तक छंटाई; 75 से 90 सें० मी० तक पत्तियां तोड़ना,	विभिन्न प्रकार की खाद 112·5 कि० ग्रा०	135 कि० ग्रा० चाय

/

श्यकता होती है; और उस भूमि को उपजाऊ तथा चाय के पौधों के उचित विकास के योग्य बनाए रखने के लिए यह आवश्यक होता है कि उस भूमि के लिए उपर्युक्त पदार्थों की व्यवस्था की जाए। नाइट्रोजन की व्यवस्था करने के लिए चाय के पौधों के साथ 'चाय उर्वरक पेड़' लगाए जाते हैं। सन् 1875 में कर्नल हैनेय ने डिब्रूगढ़ में पहली बार इस कार्य के लिए लाभप्रद पेड़ के रूप में एक पेड़, जिसे आजकल एल्बीज़ियोचाइनेन्सिस (सिन० एल्बीज़िया स्टीपुलेटा) कहते हैं, की तलाश की थी। तब *ऐसे अनेक पेड़ चाय-बागानों में लगाए गए। इन पेड़ों की तीस से अधिक अलग-अलग किस्में हैं।* इन पेड़ों की छाया चाय के पौधों पर बने रहने से चाय की उपज बढ़ती है। यदि छाया का आकार 12×12 मीटर होता है तो सात वर्षों में चाय की वार्षिक उपज प्रति हेक्टर 725 से 910 किलोग्राम तक बढ़ जाती है। किन्तु इसमें यह ध्यान रखना होता है कि छाया के साथ-साथ किस मात्रा में *रासायनिक खाद का उपयोग किया जाए, क्योंकि* दोनों का एकसाथ उपयोग करने पर रासायनिक खाद का प्रभाव कम हो जाता है। छायादार पेड़ों के नीचे उगनेवाली चाय की पत्तियां कुछ कालो-सी और काफी बड़ी-बड़ी होती हैं और उनमें, धूप में उगनेवाली चाय की पत्तियों की तुलना में, अधिक नमी रहती है। छाया के कारण चाय के गुणों में वृद्धि होती है। अतः चाय-क्षेत्रों में छायादार पेड़ों का रोपना काफी लाभप्रद रहता है। परन्तु श्रीलंका के वैज्ञानिकों का मत है कि समुद्र के तल से काफी ऊंची उपजाऊ भूमियों यानी ऊंची पहाड़ियों पर चाय के पौधों को छाया की आवश्यकता नहीं है।

` तथा विनाशकारी कीट

1960 में लगाए गए एक अनुमान के अनुसार भारत में लगभग 640 लाख टन अर्थात् कुल उपज का 13 प्रति-
.. भाग विनाशकारी कीटों और बीमारियों के कारण नष्ट हो

पत्तियां चुनी जा रही हैं

ता है। आरम्भ से ही चाय-बागानों के सामने विनाशकारी कीटों और रोगों की समस्या रही है। पौधों को इनसे सुरक्षित रखने के लिए पहले गोबर, तम्बाकू मिले पानी, या मिट्टी के तेल के घोल को काम में लाया जाता था। उसके बाद 'लाल मकड़ी', जो चाय की आधी उपज को खा जाती थी, को नष्ट करने के लिए गंधक के चूर्ण का प्रयोग किया जाता था। आज विभिन्न प्रकार की कीट दवाइयों और डी०डी०टी० आदि का प्रयोग पौधों की सुरक्षा के लिए किया जाता है। बीमारियों की रोक-थाम के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। चाय-बागानों में वायुयान द्वारा दवाइयां छिड़कने का काम इसलिए नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनमें अनेक छायादार पेड़ होते हैं। फिर भी

माना जाने लगा और यह विचार कई वर्षों तक चल
किन्तु अब इस बात में कोई संदेह नहीं है कि
विकास के लिए उसकी छंटाई करना
जितना कि उसे खाद देना।

चाय का पौधा नवम्
45 सेंटीमीटर ऊंचा हो जा
है। इसके बाद पौधा जून के
मीटर तक पहुंच जाता है। पत्ति
हैं। अगले वर्ष पौधे की छंटाई न
तोड़ी जाती हैं। इसके बाद पौधे
25 वर्ष की आयु में पौधे की ऊंचाई
पत्तियां तोड़ना कठिन हो जाता है।
की जाती है। इस छंटाई के बाद पौ
सेंटीमीटर तक रखी जाती है और ये पौध
सेंटीमीटर बढ़ते हैं। लगभग 40 वर्ष बाद उ
नये पौधे लगाए जाते हैं। नवम्बर और दिसम्
की दृष्टि से सर्वोत्तम होते हैं। इसके बाद छंटा
की हानि पहुंचने का भय रहता है।

असम में प्रति वर्ष और दूसरे वर्ष छंटाई के का
उपज में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। चाय के पौ
वर्ष छंटाई न करने से एक लाभ यह होता है कि चा
में कम श्रमिकों से भी काम चल जाता है, और छंटाई
को हिस्सों में बांटकर किया जा सकता है। छंटाई न क
पौधों में पत्तियां जल्दी आती हैं, किन्तु ये पत्तियां शीघ्र कम
भी हो जाती हैं। ... के पौधों की उपज बढ़ाने के लिए
आवश्यक है।

चाय के
करने,

पत्तियां तोड़ना

अनेक प्रयोगों के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भूमि के ऊपर 70 सेंटीमीटर तक पौधे की पत्तियां नहीं तोड़नी चाहिए। छोटी-छोटी कोपलें, जिन्हें भंजी कहते हैं, तत्काल तोड़ देनी चाहिए, अन्यथा फसल खराब हो जाने का डर रहता है। असम में चाय की कुल उपज में लगभग 20 प्रतिशत ऐसी ही कोंपलें होती हैं। यहां जनवरी के प्रारम्भ में नई कोंपलें फूटने लगती हैं और यह क्रम 105 दिन तक चलता रहता है। नई कोपलों के फूटने का दूसरा सिलसिला अप्रैल के मध्य से आरम्भ होकर लगभग 80 दिन तक चलता रहता है। नई कोंपलों का तीसरा सिलसिला जुलाई के पहले सप्ताह में आरम्भ होकर 50 दिन से ऊपर तक चलता है और पांचवां तथा अन्तिम क्रम नवम्बर के मध्य में शुरू होकर लगभग 4५ दिन चलता है।

नई कोपलें फूटने का पहला, दूसरा और तीसरा सिलसिला आरम्भ हो जाने पर इन कोंपलों को आसानी से पहचाना जा सकता है। 1,800 कोंपलों का वजन लगभग 450 ग्राम होता है।

खाद

चाय की उपज बढ़ाने के लिए कई प्रकार की खाद काम में लाई जाती है। पहले ऐसा भी माना जाता था कि खाद से चाय के गुण नष्ट हो जाते हैं। सन् 1900 के आसपास चाय के पौधों के विकास में वृद्धि के लिए कई प्रकार की खाद तैयार करने के प्रयत्न सफल हो गए। उन दिनों पेड़-पौधों की टहनियों, पत्तों, घास, हड्डियों और राख का प्रयोग करने के साथ-साथ रासायनिक खाद का भी उपयोग किया जाता था।

45 किलोग्राम चाय-पत्तियों की उपज में 22.5 किलोग्राम नाइट्रोजन, 11.25 किलोग्राम पोटाश, 3.6 किलोग्राम फास्फे-

श्यकता होती है; और उस भूमि को उपजाऊ तथा चाय के पौधों के उचित विकास के योग्य बनाए रखने के लिए यह आवश्यक होता है कि उस भूमि के लिए उपर्युक्त पदार्थों की व्यवस्था की जाए। नाइट्रोजन की व्यवस्था करने के लिए चाय के पौधों के साथ 'चाय उर्वरक पेड़' लगाए जाते हैं। सन् 1875 में कर्नल हैनेय ने डिब्रूगढ़ में पहली बार इस कार्य के लिए लाभप्रद पेड़ के रूप में एक पेड़, जिसे आजकल एल्बीज़ियोचाइनेन्सिस (सिन० एल्बीजिया स्टीपुलेटा) कहते हैं, की तलाश की थी। तब ऐसे अनेक पेड़ चाय-बागानों में लगाए गए। इन पेड़ों की तीस से अधिक अलग-अलग किस्में हैं। इन पेड़ों की छाया चाय के पौधों पर बने रहने से चाय की उपज बढ़ती है। यदि छाया का आकार 12×12 मीटर होता है तो सात वर्षों में चाय की वार्षिक उपज प्रति हेक्टर 725 से 910 किलोग्राम तक बढ़ जाती है। किन्तु इसमें यह ध्यान रखना होता है कि छाया के साथ-साथ किस मात्रा में रासायनिक खाद का उपयोग किया जाए, क्योंकि दोनों का एकसाथ उपयोग करने पर रासायनिक खाद का प्रभाव कम हो जाता है। छायादार पेड़ों के नीचे उगनेवाली चाय की पत्तियां कुछ काली-सी और काफी बड़ी-बड़ी होती हैं और उनमें, धूप में उगनेवाली चाय की पत्तियों की तुलना में, अधिक नमी रहती है। छाया के कारण चाय के गुणों में वृद्धि होती है। अतः चाय-क्षेत्रों में छायादार पेड़ों का रोपना काफी लाभप्रद रहता है। परन्तु श्रीलंका के वैज्ञानिकों का मत है कि समुद्र के तल से काफी ऊंची उपजाऊ भूमियों यानी ऊंची पहाड़ियों पर चाय के पौधों को छाया की आवश्यकता नहीं है।

रोग तथा विनाशकारी कीट

सन् 1960 में लगाए गए एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रति वर्ष लगभग 640 लाख टन अर्थात् कुल उपज का 13 प्रतिशत भाग विनाशकारी कीटों और बीमारियों के कारण नष्ट हो

मशीन द्वारा अधिक से अधिक मात्रा में दवाइयां छिड़कने की कोशिश की जाती है और वह दिन दूर नहीं है, जब चाय के पौधों में बीमारियां फैलानेवाली लाल मकड़ी और मच्छरों, आदि विनाशकारी कीटों और रोगों की पूरी तरह रोक-थाम की जा सकेगी।

लेकिन आज तो ये शत्रु चाय उद्योग के समक्ष एक विकट समस्या के रूप में विद्यमान है। वैज्ञानिकों के अनुसार सन् 1903 में चाय के 130 विनाशकारी कीटों का पता लग चुका था। आज वैज्ञानिक लगभग 200 विनाशकारी कीटों के सम्बन्ध में खोजबीन कर रहे हैं तथा उनकी रोकथाम के लिए उपाय ढूंढ़ने में लगे हुए है।

कभी-कभी चाय के पौधे की बीमारी स्थानीय होती है। कुछ कीड़े और बीमारियां ऐसी हैं जो भारत के चाय-बागानों में दिखाई नहीं देतीं।

यहां कुछ प्रमुख किटाणुओं और रोगों का संक्षिप्त विवरण और उनकी रोकथाम के उपायों के बारे में लिखा जा रहा है :

(1) सर्पमीन कृमि (Eal Worm) (Maloidogyne incognita acrita)—सर्पमीन कृमि, जिन्हें नेमाटोड भी कहते हैं, चाय की पौधों की जड़ों पर आक्रमण करते है। 3-6 महीने की आयु के बीच इन कृमियों से बहुत अधिक हानि हो सकती है। एक वर्ष के पश्चात् पौधों में इन कृमियों को प्रतिरोध करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। कृमि-ग्रस्त पौधों को उनकी पीली पत्तियों तथा रुकी हुई बाढ़ से पहचाना जा सकता है।

सर्पमीन कृमि का नियंत्रण : बोने से कम से कम 3 या 4 सप्ताह पूर्व नर्सरी की क्यारियों में नोमोगन लगाना चाहिए। इसे इंजेक्टर गन के द्वारा मिट्टी में परिव्याप्त किया जाता है। परिव्याप्त करने के तुरन्त पश्चात् छिद्रों को बन्द कर देना चाहिए और प्रत्येक क्यारी में खूब पानी देना चाहिए। पानी में 60 प्रतिशत नोमोगन मिलाकर भी क्यारियों मेंया जा सकता है।

(2) लाल मकड़ी (Red spider) (Oligonychus Coffeae; Metatetranychus bioculatus)—उत्तर-पूर्वी भारत में यह चाय के लिए सबसे अधिक हानिकारक कीड़ा है। यह साधारणतया पत्तियों के ऊपरी तल पर पाया जाता है। मार्च के पिछले भाग तथा अप्रैल में इसकी संख्या बहुत बढ जाती है। मई और जून में भी इसकी संख्या में वृद्धि होता रहती है। वर्षा आरम्भ होने पर ये बहुत बड़ी सख्या में पानी के साथ बह जाते है। इनका जीवन-चक्र गर्मियों में लगभग एक सप्ताह में पूरा हो जाता है। वयस्क निम्फ तथा लार्वा पत्तियो से रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं। इसके परिणाम-स्वरूप पत्तियों पर लाल धब्बे पड़ जाते हैं।

(3) अंगूरी कीड़ा (Scarlet Mite) (Brevi palpus californicus)—इस कीड़े ने दुआर और दार्जिलिंग में एक गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लिया है, और यह असम में भी फैलता जा रहा है। इसका जीवन-चक्र 3-4 सप्ताह में पूरा हो जाता है। यह अधिकतर पत्तियों के निचले तल पर पाया जाता है। इनकी संख्या मार्च से बढ़ना आरम्भ होती है और मई-जून में अधिकतम हो जाती है। अंगूरी कीड़े का आक्रमण पत्तियों के पीले पड़ जाने से पहचाना जा सकता है, इस आक्रमण से निचले तल के साथ-साथ बीच की नस भी भूरी पड़कर बेरंग हो जाती है।

(4) गुलाबी कीड़ा और नारंगी कीड़ा (Pink Mite) (Acaphylla theae)—लाल मकड़ी और अंगूरी कीड़े के चार जोड़ी पैर होते हैं, किन्तु गुलाबी कीड़े और नारंगी कीड़े के दो जोड़ी पैर होते हैं। नारंगी कीड़ा मुख्य रूप से पत्ती के निचले तले पर पाया जाता है। आक्रांत पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और सूख जाती हैं।

2-3-4 का नियंत्रण : लाल मकड़ी के नियन्त्रण के लिए उपयोग में आने वाला कोई भी एकरसाइड अंगूरी कीड़े आदि के लिए भी उतना ही घातक होता है। ये कोट पत्तियों तथा नवजात तनों के भीतर की ओर होते हैं। वहां टेकलियन बी०-18 का अतिरिक्त

छिड़काव करना चाहिए।

(5) बैंगनी कीड़ा (Purple Mite) (Calacarus carinatus)—इसका रंग लाल और नीले का मिश्रण होता है। इसके शरीर के ऊपरी भाग पर पांच लम्बी रेखाएं होती हैं। यह पत्तियों के दोनों तलों पर पाया जाता है। इसके द्वारा पहुंचाई गई हानि की विशेषता यह है कि पत्तियों का रंग तांबे जैसा बदरंग हो जाता है, जो किनारों पर विशेष रूप से दिखाई देता है। पौधों पर इसका आक्रमण प्रायः शरद ऋतु में होता है।

नियन्त्रण : इस कीड़े के नियंत्रण के लिए गुलाबी कीड़े वाली पद्धति ही अपनाई जाती है। उसके अतिरिक्त कैलथान का छिड़काव भी लाभकारी सिद्ध होता है।

(6) फिचिड्स (Phychids)—फिचिड्स की मादा ह्रसित होती है। उसमें अण्डों के थैलों के अतिरिक्त और कुछ नही होता। लार्वा अपने बक्स निर्माण करते हैं, जो बनावट और आकार में भिन्न होते हैं। वे जब इधर-उधर चलते हैं तो अपने बक्स को साथ ले जाते है। प्रत्येक जाति के लार्वा का अपना विशिष्ट बक्स होता है। फिचिड्स लार्वा परिपक्व पत्ती को अधिक पसंद करता है। लार्वा लगभग 10 महीने रहता है और प्यूपा 2-3 सप्ताह।

(7) इल्ली, झिनगा (Caterpillar) (Androca bipunctata)—इसके लार्वा एक समूह में रहते हैं। ये रात को हानि पहुंचाते है और दिन में निष्क्रिय पड़े रहते हैं। ये पत्तियों को अचानक खाने वाले है।

(8) रेंगने वाला झिनगा (hooper caterpillar) (Biston-supressania)—रेंगने वाला झिनगा चाय की गम्भीर महामारी है। इसके अधिक बड़े लार्वा पत्तियों को पूर्णरूप से खा जाते हैं। लार्वा 3-4 सप्ताह और प्यूपा लगभग 3 सप्ताह रहता है।

6,7,8 का नियन्त्रण : फिचिड्स, झिनगों और रेंगने वाले झिनगों की सब श्रेणियों के लिए एण्ड्रिन सर्वाधिक उपयोगी पाई

गई है। इसके छिड़काव से इन कीड़ों को रोका जा सकता है। इन कीड़ों की आरम्भिक अवस्था में डी० डी० टी० भी लाभकारी पाई गई है।

(9) शल्की कीड़े और सफेद मत्कुण (Scale Insects & Mealy Bugs)—ये रस चूसने वाले कीड़े हैं। इनम से कुछ चाय के पौधों को हानि पहुंचाते हैं। इनका आक्रमण गम्भीर होने पर पौधे मुरझा कर गिर सकते हैं।

नियन्त्रण : शल्की कीड़ो और सफेद मत्कुणों को शिलीमार-एल के तेल के प्रयोग से सरलता से नियंत्रित किया जा सकता है। आरम्भ में जब उनका शरीर लगभग खुला होता है, 10-15 दिन के अन्तर से दो छिड़काव काफी होते हैं, जबकि बाद में मोमिया खाल वाले या सफेद खाल वाले मत्कुणों के लिए तीन छिड़कावों की आवश्यकता है। यह तेल पत्तियों को हानि पहुं-चाता है, और इसके कारण तैयार चाय पर धब्बे भी पड़ जाते हैं। इसलिए यह छिड़काव शरद ऋतु में करना चाहिए। चूना गंधक 40 भाग पानी में 1 के हिसाब से किसलय के खिलने के समय भी काम में लाया जा सकता है।

(10) लालिमायुक्त कीड़े (Flush Worm) (Laspyresta laucostoma)—लालिमायुक्त कीड़े का लार्वा चोटी की कुछ पत्तियों पर आक्रमण करता है और उन्हें साथ-साथ बांध देता है। आक्रांत पत्तियां खुरदरी और मोटी हो जाती हैं। आक्रमण की की तीव्रता मार्च-अप्रैल में होती है। यह 10-12 दिन रहता है।

नियन्त्रण : इनसे संक्रमित पत्तियां चुनने के समय अलग एकत्र कर लेनी चाहिए और उन्हें नष्ट कर देना चाहिए। और पत्ती चुनने के पश्चात् हर बार डी० डी० टी० छिड़कना चाहिए। एल्ड्रीन तथा एल्ड्रिन दोनों, डी० डी० टी० की अपेक्षा अधिक लाभकारी होते हैं।

(11) हरी मक्खी (Tea jassid) (Empoaca flarescans)—यह मक्खी काफी बड़े क्षेत्र में फैली हुई है। यह बढ़ती हुई पत्तियों

का रस चूसती है। इसके परिणाम-स्वरूप पत्तियां नीचे को झुक जाती हैं। यह अधिकतर उनके नीचे के तल पर पाई जाती है। यह महामारी नई फसल की उपज से लेकर जुलाई तक अधिक क्रियाशील रहती है।

नियन्त्रण : हरी मक्खी मार्च में दिखाई देती है, और यदि ऋतु अनुकूल हुई तो फरवरी के अन्त में भी दिखाई पड़ सकती है। इससे रक्षा के लिए पत्तियों के दोनों तलों पर डी० डी० टी० छिड़क देना चाहिए। अच्छे नियन्त्रण के लिए 7 से 10 दिन के अवकाश से कम से कम दो बार छिड़काव अवश्य करना चाहिए। डी० डी० टी० और एलड्रिन के मिले-जुले घोल को छिड़कने से सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त हुए हैं।

(12) दीमक (Termites)—उत्तर-पूर्वी भारत में पौधों में छिद्र करनेवाली तथा लकड़ियां खानेवाली दीमक चाय को हानि पहुंचाती है।

नियन्त्रण : मिट्टी के उपचार के रूप में 2.24 किलोग्राम टैरिक 2.25 किलोग्राम प्रति हैक्टर के हिसाब से; और एलड्रिन तथा डाइलड्रिन अत्यन्त प्रभावी हैं।

चाय के कुछ प्रमुख कवक रोग

चाय के कवक रोग इतने हैं कि यहां उन सबका वर्णन नहीं किया जा सकता। कवक ऐसे छोटे पौधे होते हैं जिनमें पर्ण-हरित नहीं होता, वे मृत पौधों से खाद्य लेकर या जीवित पौधों से रस चूसकर अपना पोषण करते हैं इन रोगों में प्रमुख हैं—

1) पत्तियों के रोग—काला विगलन, फफोला अंगमारी आदि
2) तने के रोग—लाल किट्ट, नेक्ट्रिया आदि
3) जड़ के रोग—लाल जड़ विगलन, भूरा जड़ विगलन, काला जड़ विगलन आदि

पत्तियों के रोग जैसे काला विगलन, फफोला अंगमारी

आदि मैदानों में आम तौर से होते हैं और पर्वतों पर बहुत कम। कॉर्टीसियम इनवीसम के कारण पत्तियों पर काले धब्बे पड़ जाते हैं। आरम्भ में यह रोग अदृश्य रहता है। फिर पत्तियों पर भूरे चिह्न आते है, जो बढ़कर बड़े-बड़े धब्बों में परिवर्तित हो जाते हैं।

कोर्टिसयम अधिक गहरी छाल उत्पन्न करती है, जिसका रंग बैंगनी-सा होता है। वे तनों के साथ-साथ बढ़ते है और पत्तियों में फैल जाते हैं। ये दोनों जातियां सिक्लिरोटिया के कारण उत्पन्न होती है।

नियन्त्रण : तांबे का कवक नाशी 0.25 प्रतिशत सान्द्रण में दो बार छिड़कना लाभकारी होता है। ये छिड़काव मध्य अप्रैल से मई तक दो सप्ताह के अंतर से किए जाने चाहिए।

फफोला अंगमारी (Blister Blight) (Exobasidium vexans)—यह रोग पहाड़ियों और पहाड़ियों के नीचे के क्षेत्रों में आम है। इस बीमारी के लिए सर्वाधिक अनुकूल परिस्थिति ठंडी या आर्द्र ऋतु है। पौधों की नवजात तथा रसपूर्ण बढ़वार को इससे हानि पहुंच सकती है।

नियन्त्रण : इसके नियंत्रण के लिए प्रति हेक्टर 4.5 किलोग्राम कवक नाशी तांबे के घोल का या कम मात्रा में निकल क्लोराइड का छिड़काव करना चाहिए। इन्हें 7-10 दिन के अन्तर से छिड़कने से यह संक्रमण कम हो जाता है।

धूसर और भूरी अंगमारी (Grey and Brown Blight)—यह रोग उस समय फैलता है जब पौधे लाल मकड़ी के आक्रमण, सूर्य की ऊष्मा, नाइट्रोजन की कमी, पानी के रुकाव, अनावृष्टि आदि के कारण कमजोर पड़ जाते हैं।

नियन्त्रण : सीधे तौर पर इसका इलाज आवश्यक नहीं है। इस रोग को रोकने के लिए आरम्भ से ही प्रयत्नशील रहना चाहिए।

लाल किट्ट (Red Rust)—लाल किट्ट कवक या फफूंद द्वारा

का रस चूसती है। इसके परिणाम-स्वरूप पत्तियां नीचे को झुक जाती है। यह अधिकतर उनके नीचे के तल पर पाई जाती है। यह महामारी नई फसल को तोड़ने से लेकर जुलाई तक अधिक क्रियाशील रहती है।

नियन्त्रण : हरी मक्खी मार्च में दिखाई देती है, और यदि ऋतु अनुकूल हुई तो फरवरी के अन्त में भी दिखाई पड़ सकती है। इससे रक्षा के लिए पत्तियों के दोनों तलों पर डी० डी० टी० छिड़क देना चाहिए। अच्छे नियन्त्रण के लिए 7 से 10 दिन के अवकाश से कम से कम दो बार छिड़काव अवश्य करना चाहिए। डी० डी० टी० और एलड्रिन के मिले-जुले घोल को छिड़कने से सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त हुए हैं।

(12) दीमक (Termites)—उत्तर-पूर्वी भारत में पौधों में छिद्र करनेवाली तथा लकड़ियां खानेवाली दीमक चाय को हानि पहुंचाती है।

नियन्त्रण : मिट्टी के उपचार के रूप में 2.24 किलोग्राम टैरिक 2.25 किलोग्राम प्रति हेक्टर के हिसाब से; और एलड्रिन तथा डाइलड्रिन अत्यन्त प्रभावी है।

चाय के कुछ प्रमुख कवक रोग

चाय के कवक रोग इतने है कि यहां उन सबका वर्णन नहीं किया जा सकता। कवक ऐसे छोटे पौधे होते हैं जिनमें पर्ण-हरित नहीं होता, वे मृत पौधों से खाद्य लेकर या जीवित पौधों से रस चूसकर अपना पोषण करते हैं इन रोगों में प्रमुख है—

1) पत्तियो के रोग—काला विगलन, फफोला अंगमारी आदि
2) तने के रोग—लाल किट्ट, नेक्ट्रिया आदि
3) जड़ के रोग—लाल जड़ विगलन, भूरा जड़ विगलन, काला जड़ विगलन आदि

विगलन, फफोला अंगमारी

आदि मैदानों में आम तौर से होते है और पर्वतों पर बहुत कम। कोर्टीसियम इनवीसम के कारण पत्तियों पर काले धब्बे पड़ जाते हैं। आरम्भ में यह रोग अदृश्य रहता है। फिर पत्तियों पर भूरे चिह्न आते हैं, जो बढ़कर बड़े-बड़े धब्बों में परिवर्तित हो जाते हैं।

कोर्टिसियल अधिक गहरी छाल उत्पन्न करती है, जिसका रंग बैंगनी-सा होता है। ये तनों के साथ-साथ बढ़ते हैं और पत्तियों में फैल जाते हैं। ये दोनों जातियां सिक्लिरोटिया के कारण उत्पन्न होती है।

नियन्त्रण : तांबे का कवक नाशी 0.25 प्रतिशत सान्द्रण में दो बार छिड़कना लाभकारी होता है। ये छिड़काव मध्य अप्रैल से मई तक दो सप्ताह के अंतर से किए जाने चाहिए।

फफोला अंगमारी (Blister Blight) (Exobasidium vexans)—यह रोग पहाड़ियों और पहाड़ियों के नीचे के क्षेत्रों में आम है। इस बीमारी के लिए सर्वाधिक अनुकूल परिस्थिति ठंडी या आर्द्र ऋतु है। पौधों की नवजात तथा रसपूर्ण बढ़वार को इससे हानि पहुंच सकती है।

नियन्त्रण : इसके नियंत्रण के लिए प्रति हेक्टर 4.5 किलोग्राम कवक नाशी तांबे के घोल का या कम मात्रा में निकल क्लोराइड का छिड़काव करना चाहिए। इन्हें 7-10 दिन के अन्तर से छिड़कने से यह संक्रमण कम हो जाता है।

धूसर और भूरी अंगमारी (Grey and Brown Blight)—यह रोग उस समय फैलता है जब पौधे लाल मकड़ी के आक्रमण, सूर्य की ऊष्मा, नाइट्रोजन की कमी, पानी के रुकाव, अनावृष्टि आदि के कारण कमजोर पड़ जाते हैं।

नियन्त्रण : सीधे तौर पर इसका इलाज आवश्यक नहीं है। इस रोग को रोकने के लिए आरम्भ से ही प्रयत्नशील रहना चाहिए।

लाल किट्ट (Red Rust)—लाल किट्ट कवक या फफूद द्वारा

पैदा होने वाला रोग नहीं है, यह एक काई, जिसका नाम सेफैल्यूरोस पैरासिटिकस है, द्वारा उत्पन्न होता है। यह नवजात पौधों का रोग है और पत्तियों तथा तनों पर आक्रमण करता है। यदि इसकी रोक-थाम नहीं की जाती तो पौधों के मर जाने की सम्भावना होती है।

इस पर बीजाणुधानी उत्पन्न होने से पूर्व कवक नाशी उपचार लाभप्रद नहीं होता है। बीजाणुधानियों के फूटने के समय तांबे के कवकनाशी दो बार छिड़कना अच्छा रहता है। इसके आक्रमण को रोकने के लिए पौधों पर समुचित छाया रखनी चाहिए, मिट्टी की उचित व्यवस्था करनी चाहिए और ठीक उर्वरक देने चाहिए।

रंध्रक (Ponia)—यह फफूद भूमि के ऊपर से आरम्भ होकर नीचे की ओर फैलती हुई जड़ तक पहुंच जाती है। यह परिपक्व पौधों को 8 से 15 वर्ष में सुखा देती है, पर नये पौधे कम समय में ही सूख जाते हैं।

नियंत्रण : छटाई की हुई झाड़ियों की सूर्य की ऊष्मा से रक्षा करनी चाहिए, और बड़ी कटाई को इंडोरेस्ट कर देना चाहिए।

जड़ की प्रारम्भिक बीमारियां

चाय की झाड़ी की प्राथमिक बीमारियां बहुत भयानक होती हैं। ये मिट्टी में उपस्थित फफूद से, जो पास्वें की जड़ में प्रवेश कर जाती है, पैदा होती हैं और पौधे को मार डालती हैं। यह रोग यदि एक बार स्वस्थ पौधे की जड़ों में घुस जाता है, तो पौधे को उखाड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता।

जड़ों की प्राथमिक सड़न की महत्वपूर्ण किस्में निम्नलिखित है —

कोयले जैसा तना विगलन (Charcoal Stump Rot)
भूरा जड़ विगलन (Brown Root Rot)
झिरोझी जड़ विगलन (Terry Root Rot)

जड़ का लाल विगलन (Red Root Rot)
जड़ का काली विगलन (Black Root Rot)
जड़ का बैंगनी विगलन (Purple Root Rot)

जड़ की गहरी नीली सड़न—जड़ की गहरी नीली सड़न जड़ की एक ऐसी बीमारी है जो मिट्टी के रन्ध्र बन्द हो जाने या पानी के रुकने के कारण पैदा होती है।

नियंत्रण : मिट्टी से पानी के निकास को सुव्यवस्थित करके पौधों को इस रोग से बचाया जा सकता है।

डिप्लोडिया (Diplodia)—जब पौधे दुर्बल हो जाते हैं, तब डिप्लोडिया उनपर आक्रमण करता है और पौधों को मार डालता है। मरे हुए पौधों को निकाल देना ही एकमात्र उपाय है।

नियंत्रण : ऐसे पौधों को, जिनपर डिप्लोडिया का आक्रमण नहीं हुआ है, इस रोग से बचाने के लिए सशक्त बनाना चाहिए। उनकी दुर्बलता के कारण दूर करने के प्रयत्न करने चाहिए।

4

चाय उत्पादन-प्रक्रम

चाय निर्माण-प्रक्रम के नये-नये तरीके ढूंढ़ने का प्रयास उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में आरम्भ हुआ। सातवें और आठवें दशक में इस दिशा में काफी तेजी से काम हुआ, और, कुछ साधारण सुधारों को छोड़कर, यह काम मुख्यतः उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक पूर्ण हो गया था। अगले पचास वर्षों में चाय की खेती का विस्तार करने के लिए प्रयत्न किए गए, पर इन दिनों उत्पादन-प्रक्रम की तकनीक में बहुत ही कम मौलिक परिवर्तन हुए।

उत्पादन-प्रक्रम

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में चाय निर्माण-प्रक्रम के विभिन्न चरण निम्नलिखित माने गए थे —

1) पत्तियों को कुम्हलाना
2) रोलिंग
3) शोधन
4) पत्तियों को सुखाना
5) पत्तियों को छानना

तोड़े जाने के बाद तुरन्त ही चाय की पत्तियों को कुम्हलाने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। पौधों से अलग होने के बाद पत्तियों को हवा लगने से उनमें भौतिक तथा रासायनिक परि-

वर्तन होने लगते हैं। चाय की ताजा पत्ती का पचहत्तर प्रतिशत भाग पानी होता है। जब तक पानी की यह मात्रा कम नहीं हो जाती, आगे की प्रक्रिया आरम्भ करना उचित नहीं होता। पत्तियों के कुम्हलाने की प्रक्रिया मे, पानी की मात्रा कम होने के साथ-साथ पत्तियों मे जो रासायनिक परिवर्तन होते है, उनकी वास्तविक प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आज भी प्रयत्न किए जा रहे हैं। अच्छे गुणों वाली चाय तैयार करने के लिए ये परिवर्तन आवश्यक है; किन्तु इन परिवर्तनों को प्राप्त करने के लिए पत्तियों को ठीक कितने समय तक कुम्हलाने की प्रक्रिया से गुजारना चाहिए, इस सम्बन्ध में खोजबीन चल रही है।

निर्माण-प्रक्रम का दूसरा चरण है रोलिंग। इस प्रक्रिया में पत्तियों को इस तरह मसला जाता है, कि उनमें से रस निकलने लगता है, इससे प्रक्रम की अगली प्रक्रिया, शोधन, की सफलता में सहायता मिलती है, इसके साथ ही रोलिंग का उद्देश्य यह भी होता है कि चाय की पत्तियां इस तरह तुड़-मुड़ जाए, कि उन का रंग-रूप निखर आए और उनका मूल्य बढ़ जाए। पुरानी तरह के निर्माण-प्रक्रम में चाय की पत्तियों की रोलिंग दो-तीन बार की जाती है। हर बार पत्तियों के ढेर से वह भाग छानकर अलग कर दिया जाता है, जिसकी पुनः रोलिंग करना आवश्यक नहीं समझा जाता।

निर्माण-प्रक्रम के तीसरे चरण, शोधन, में पत्तियों का आक्सीकरण होता है। शोधन में सफलता प्राप्त करने के लिए उच्च ताप के बिना आर्द्रता का अधिक होना आवश्यक होता है।

पिछले दिनों में शोधन-प्रक्रिया के बाद चाय की पत्तियों को बड़ी-बड़ी कढ़ाइयों में डालकर किया जाता था, और फिर, दो बार रोलिंग की जाती थी। आजकल पत्तियां सुखाने के लिए मशीनें उपयोग में लाई जाती हैं।

शोधन-प्रक्रिया के बाद चाय की पत्तियों को गर्म करके सुखाने का मुख्य उद्देश्य शोधन-प्रक्रिया को नियन्त्रित रखना है। यदि

शोधन-प्रक्रिया को रोका नहीं जाता, तो उससे चाय के कई गुण नष्ट हो जाने की संभावना बनी रहती है। चाय की पत्तियों को गर्म करने और सुखाने से उनका रंग हल्का भूरा हो जाता है।

निर्माण-प्रक्रम के अन्तिम चरण में पत्तियों को छाना जाता है।

इस सम्बन्ध में यह बता देना आवश्यक है कि सब प्रकार की भारतीय चाय को निर्माण-प्रक्रम के उपर्युक्त चरणों में होकर नहीं गुज़ारा जाता। उदाहरण के लिए, भारत में ऐसी चाय मिलती है, जिसे कुम्हलाए बिना ही तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त यहां हरी चाय भी प्राप्त होती है।

पत्तियों का कुम्हलाना

क्लाड वाल्ड ने 'भारतीय चाय' नामक अपनी पुस्तक में, चाय की पत्तियों को कुम्हलाने के सम्बन्ध में एक अज्ञात चीनी लेखक की पुस्तक का उद्धरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है: 'बांस की चटाई पर चाय की पत्तियां पांच या छः इंच 12.5-15 सेंटीमीटर मोटी तह में बिछा दें और इस बात का ध्यान रखें कि वह चटाई ऐसी जगह रखी हो, जहां हवा आ-जा रही हो। पत्तियों को इस प्रकार दोपहर के बारह बजे से लेकर छः बजे या तब तक रखा रहने दें, जब तक उनमें से सुगंध न आने लगे। उसके बाद उन्हें बांस की और बड़ी चटाई पर फैला दिया जाए, और उन्हें तीन-चार सौ बार हाथों से मसला जाए। इस प्रक्रिया से चाय की पत्तियों के किनारे लाल हो जाते हैं और वे मुड़-तुड़ जाती हैं।'

असम में चाय तैयार करने के लिए आरम्भ में यही तरीका काम में लाया जाता था। पर पत्तियों को कुम्हलाने के लिए शीघ्र ही गर्म हवा का प्रयोग किया जाने लगा। पत्तियों में गर्म हवा छोड़ने के लिए जो मशीन सबसे पहले काम में लाई गई, उसमें [illegible] में चाय की पत्तियां भरी हुई ट्रे रखी जाती थी और

उनमें गर्म हवा छोड़ी जाती थी। पर इस प्रकार की पेटी के अन्दर ताप के उस सीमा तक बढ़ जाने की आशंका बनी रहती थी, जिससे पत्तियों के गुण नष्ट हो सकते थे। इसके अतिरिक्त चाय सुखाने के लिए ऐसे आच्छादन बनाए जाते थे, जिनमें हवा से पत्तियों की कुम्हलाने की प्रक्रिया को अधिक सक्रिय करने के लिए ऊष्मा की व्यवस्था होती थी। कुछ चाय-बागानों में बांसों, लकड़ी के तख्तों, और प्लास्टर के छोटे-छोटे घर बनाकर, पत्तियां उनमें रखी जाती थी, और उनमें चिमनियों से धुआं निकलने की व्यवस्था रहती थी। इस तरह की पद्धति का वर्णन करते हुए स्विनबर्न ने लिखा है :

'इनमें ऊष्मा की मात्रा एक समान नहीं रहती, इसलिए चाय की पत्तियों की कुम्हलाने की प्रक्रिया भी एक जैसी नहीं हो पाती। अत: पत्तियों की परत पतली रखनी चाहिए और उसकी देखभाल सावधानीपूर्वक करनी चाहिए। इन चिमनीदार घरों में कहीं पत्तियां जल्दी कुम्हला जाती हैं और कहीं धीरे-धीरे कुम्हलाती हैं। उचित मात्रा तक कुम्हला जाने के बाद यदि पत्तियां चिमनी-घर में एक घंटा भी अधिक रह जाती हैं तो उनके गुण काफी मात्रा में नष्ट हो जाते हैं।'

फिर भी स्विनबर्न की मान्यता थी कि पुरानी पद्धति की तुलना में उपर्युक्त पद्धति, कई कमियों के होते हुए भी, अधिक लोकप्रिय होने लगी थी।

यह प्रणाली दार्जिलिंग और दक्षिणी भारत के चाय-बागानों में आज भी प्रयोग में लाई जा रही है। असम और कछार, तथा अन्य कई स्थानों में चाय की पत्तियों को कुम्हलाने के लिए हवादार आच्छादनों का प्रयोग किया जाता है। इन आच्छादनों पर छतें होती हैं और पत्तियों को धूप से बचाने के लिए पर्दों की व्यवस्था भी रखी जाती है।

चायघर और चाय की पत्तियों की कुम्हलाने की प्रक्रिया को गतिशील करनेवाले विशेष रूप से तैयार किए जानेवाले

आच्छादनों का निर्माण महंगा होने के कारण, अन्य तरीकों की खोज जारी रही। सन् 1892 में चाय मशीनों के एक प्रसिद्ध प्रवर्तक डब्ल्यू० जैक्मन ने जोरहाट चाय कम्पनी को एक मशीन भेजी थी, जिसमें स्टोव और पंखा लगा हुआ था। इस मशीन को सफलता नहीं मिली। इन्हीं दिनों डेविडसन ने एक ऐसा उपकरण बनाया जिसमें पत्तियों को कुम्हलाने के लिए ढोल का प्रयोग किया गया था।

पत्तियों को कुम्हलाने के लिए बीसवीं शताब्दी में छोटी-छोटी सुरंगों का प्रयोग किया जाने लगा है। इस पद्धति के अनुसार चाय की पत्तियां छोटी-छोटी सुरंगों में फैला दी जाती हैं और उन सुरंगों में पंखों से हवा भेजी जाती है।

रोलिंग

असम में चाय उत्पादन के आरम्भिक बीस-तीस वर्षों में चाय की पत्तियों की रोलिंग मज़दूरों द्वारा हाथों से निम्नलिखित प्रक्रिया के अनुसार की जाती थी।

एक अच्छी मजबूत मेज़ पर बढ़िया किस्म की चटाई बिछा दी जाती थी। उस मेज के दोनों किनारों पर मज़दूर पंक्ति में खड़े हो जाते थे और बारी-बारी से चाय की पत्तियों को मसलते थे। सात-आठ मज़दूरों में से एक-दो केवल खराब पत्तियों को निकालने का ही काम करते थे।

सन् 1867 के आसपास जे० सी० किन्माण्डन, जो असम कम्पनी में काम करते थे, ने एक रोलिंग मशीन बनाई। इससे पहले भी कई व्यक्तियों ने रोलिंग को आसान करने के लिए मशीन बनाने के कई प्रयत्न किए थे, लेकिन उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली थी। कुछ चाय फैक्ट्रियों में मज़दूर हाथों के बजाए पांवों से चाय की पत्तियों को मसलते थे। किसी फैक्ट्री में चाय की पत्तियों को थैलों में भरकर, उन्हें बक्सों में पत्थर डालकर [illegible] था। पर इसके बाद भी हाथों से रोलिंग की

आवश्यकता रहती थी। जे० सी० किन्माण्डन की मशीन में चाय की पत्तियों की रोलिंग के लिए दो ऐसे घूमनेवाले तख्तों का प्रयोग किया जाता था, जिनपर भार रखा रहता था।

जे० सी० किन्माण्डन की यह मशीन 1.35 मीटर ऊंची, 4.8 मीटर लम्बी, 1.5 मीटर चौड़ी थी। उस पर धातु की दो प्लेटें या लकड़ी की दो तख्तियां थीं जो आगे-पीछे होती रहती थीं। इन प्लेटों या तख्तियों की एक जोड़ी से एक दिन में 375-450 किलोग्राम पत्तियों की रोलिंग की जाती थी, और इनकी संख्या बढ़ाकर यह मात्रा 1475-1675 किलोग्राम तक पहुंचाई जा सकती थी। एक रोलिंग मशीन में अधिक से अधिक चार जोडी प्लेटें या तख्तियां एक साथ काम कर सकती थीं। यह मशीन दो या तीन हार्स पावर के भाप इंजन से चलाई जाती थी। लेकिन इस मशीन से रोलिंग कर लेने के बाद भी रोलिंग-प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए पत्तियों को एक बार हाथ से रोलिंग करना आवश्यक होता था।

सन् 1873 में विलियम जैक्सन ने किन्माण्डन रोलर में सुधार करके एक दूसरा रोलर तैयार किया। किन्माण्डन ने पेटेण्ट के आधार पर जैक्सन का विरोध किया, किन्तु बाद में दोनों में समझौता हो गया। इसके बाद जैक्सन अपने रोलर में सुधार करते रहे। सन् 1887 में उन्होंने 'रेपिड रोलर' तैयार किया। उनके इस 'क्रास एक्शन टी रोलर' का वर्णन वेलिस टेयलर ने इस प्रकार किया है: 'वह एक विशाल मशीन थी जिसमें एक क्रेंक होती थी, यह भाप इंजन के साथ जुड़कर काम करती थी। इस मशीन में चाय की पत्तियां रखने के लिए एक मानी भी थी। इस मानी को रोलिंग मेज के बराबर करने के लिए ऊपर नीचे किया जा सकता था। इस मशीन द्वारा रोलिंग हो जाने के बाद चाय की पत्तियों का हाथों से रोलिंग करना आवश्यक नहीं था। इस मशीन का प्रभाव यह पड़ा कि लोग हाथ से रोलिंग करना ही भूल गए। उसके बाद मार्शल एंड संज़ के

सहयोग से विलियम और जान जैक्सन ने रोलरों में विभिन्न प्रकार के सुधार किए। मेजें पहले लकड़ी की, और फिर पत्थर और सीमेंट की बनीं। उसके बाद इस काम के लिए पीतल की चादरों का प्रयोग किया गया। फिर मेजों की सतह तांबे और तदुपरांत गनमैटल से बनाई गई। सन् 1900 तक जैक्सन बंधुओं ने कई प्रकार की रोलिंग मेजें तैयार कीं। इन मशीनों में प्रयुक्त सिद्धांत मूलतः रेपिड रोलिंग मशीन वाला ही था, अन्तर केवल बनावट और यांत्रिक प्रयोग में ही था। सन् 1907 में जैक्सन-मार्शल रोलर बाजार में आया। इस मशीन में लकड़ी के बक्स की बजाए पत्तियां रखने के लिए धातु के बने सिलिंडर का प्रयोग किया जाता था और रैपिड मशीन की चौकोर मेज की बजाय पीतल की सतह वाली गोल मेज थी। वस्तुतः अब जैक्सन-मार्शल डबल एक्टिंग मशीन के रूप में रोलिंग मशीनों का पूर्ण विकास हो गया था, इसके बाद आकार और क्षमता बढ़ाने से संबंधित प्रयत्न अवश्य हुए, लेकिन सैद्धांतिक दृष्टि से कोई विशेष परिवर्तन नहीं किए गए। सन् 1927 में सिराको ओ० सी० बी० रोलिंग मशीन अपनी पूर्ववर्ती जैक्सन-मार्शल मशीन के सिद्धांत पर ही बनी। इसमें मामूली-सा अन्तर क्रैंक और बाल और रोलर बेयरिंग के प्रयोग के कारण ही था।'

चाय की रोलिंग मशीनों के विकास में सेमुअल डेविडसन का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने ओ०सी०बी०टी०रोलिंग मशीन बनाई। इस मशीन में डबल एक्शन टी-रोलर के घूमने वाले क्रैंक की सहायता करने के लिए ओवर हैड क्रैंक बेयरिंग का प्रयोग किया गया था। चाय रोलिंग मशीनों के विकास में जिन भी आविष्कारकों का योगदान रहा, उनका यही उद्देश्य रहता था कि पत्तियों की रोलिंग करनेवाली मशीनों की कार्यक्षमता अधिक से अधिक बढ़ाई जाए।

देश-विदेश में चाय की मांग प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी।
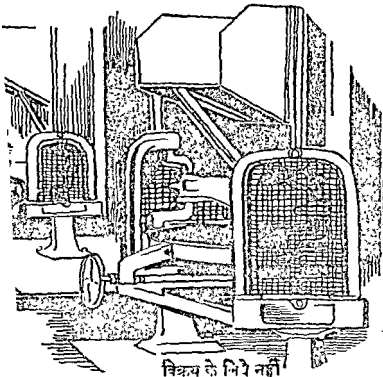
रोलिंग कक्ष—जहां चाय की पत्तियां चूर्ण की जाती हैं

पत्तियों की बढ़िया रोलिंग करना अपेक्षित था। आरम्भ में चाय-रोलर मेज़ की तरह चपटे थे और वे आगे और पीछे की ओर चलते थे। उनकी गति में सहजता नहीं थी। चाय की पत्तियों की रोलिंग प्रक्रिया को सहज और अच्छा बनाने के लिए यह प्रयत्न किया गया कि रोलिंग-प्रक्रिया के दौरान चाय की पत्तियां इधर-उधर या आगे की ओर न जाकर केन्द्र की ओर ही जाएं। जैक्सन बन्धुओं की रैपिड मशीनों के द्वारा इसी दिशा में पग

उठाए गए। इस मशीन की रोलिंग सतह में खाली स्थान रख कर वहां छोटे-छोटे ब्लाक इस तरह फंसा दिए जाते थे जो चाय की पत्तियों से आगे-पीछे होते रगड़ खाते थे। फिर से ब्लाक इस ढंग और कोण से लगाए जाने लगे कि चाय की पत्तियां मसले जाने पर केन्द्र की ओर चलती रहतीं और नई पत्तियां अपने-आप उनकी जगह लेती रहतीं। इसके बाद यह व्यवस्था आई कि यह प्रक्रिया लगातार चलती रहे। इतनी प्रगति हो जाने पर भी एक कमी रह गई—पत्तियां प्रक्रिया में केन्द्र की ओर बढ़ती तो थीं, लेकिन कभी-कभी वे एक जगह इकट्ठी होने लगती थीं और इस प्रकार प्रक्रिया की सहजता अवरुद्ध हो जाती थी। किन्तु कर्मठ आविष्कारक हार माननेवाले नहीं थे। उन्होंने इस दिशा में सफल प्रयत्न किए। सबसे पहले हुड को गहरा किया गया और ब्लाक की जगह बेटन लगाए गए। फिर रोलिंग को और ज्यादा परिष्कृत करने के लिए दूसरी और तीसरी रोलिंग की मशीनों में उस्तरे के समान तेज चाकू लगाए जाने लगे, जिससे हरी पत्तियों की डंडियां तथा अन्य भाग पत्तियों से अलग किए जाने लगे।

उन दिनों चाय की फैक्ट्रियों में सबसे अधिक शोर वहां होता था जहां रोलिंग मशीन काम करती थी। धीरे-धीरे इन मशीनों में बॉल और रोलर बेयरिंगों के प्रयोग से मशीनों का यह शोर भी दूर हो गया।

सन् 1912 में पेरमैन ने एक ऐसी मशीन पेटेण्ट कराई थी जो रोलिंग करने से पहले चाय की पत्तियों की अनावश्यक नमी को सोख लेती थी। लेकिन बाद में इन मशीनों का प्रयोग बंद कर दिया गया।

पर्याप्त ढंग से न कुम्हलाई हुई चाय की पत्तियों की रोलिंग करने से सम्बन्धित कठिनाई को दूर करने की दिशा में भी कई प्रयत्न किए गए। बिना कुम्हलाई हुई पत्तियों की रोलिंग करने के लिए सन् 1923 में कछार में चारा काटने की मशीन का प्रयोग

किया गया। फिर चाय की पत्तियों की बारीक कटाई करने के लिए लेग-कटर का प्रयोग किया जाने लगा। चाय की पत्तियों की महीन कटाई करने से कई प्रकार के लाभ थे। एक लाभ यह था कि महीन टुकड़ों के कारण पत्तियों की शोधन-प्रक्रिया काफी तेजी से होती थी।

कटाई से पहले पत्तियां हुड में हिलती रहती हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया के लिए दो प्रकार की मेजें प्रयोग में लाई जाती है। एक प्रक्रिया में मेज एक स्थान पर जमी रहती है और पत्तियों भरी हुड हिलती रहती है; और दूसरी प्रक्रिया में हुड जमी रहती है और मेज इधर-उधर घूमती रहती है। इस प्रकार महीन काटी हुई चाय की पत्तियों की मामूली-सी रोलिंग की जाती है। यह प्रणाली कछार तथा उन क्षेत्रों में अत्यधिक प्रचलित है, जहां चाय की पत्तियो को कुम्हलाने की प्रक्रिया कारगर ढंग से पूर्ण नही हो पाती है।

चाय की पत्तियों की रोलिंग करने के लिए, जैक्सन बंधुओं की रोलिंग मशीन का पूरा लाभ उठाते हुए, रोलिंग प्रक्रिया में अन्य पहलू जोड़ देने की दिशा में कई पग उठाए गए लगभग सन् 1930 मे श्री निकल ने 'ई० जे० मशीन' बनाई, तो सन् 1931 में श्री डब्ल्यू मक्केर्वर ने सी० टी० सी० मशीन का निर्माण किया।

उपर्युक्त पहली मशीन या तो पूरी तरह चाय की पत्तियों को कुम्हला देती थी, या 30 सेंटीमीटर के स्टेनलेस स्टील के दो रोलरों के बीच चाय की पत्तियों को इस तरह मसला जाता था कि पत्तियों की कोशिकाएं तक टूटने लगती थीं और पत्तियों का रस रिसने लगता था। इस मशीन में एक रोलर ठोस होता था, और दूसरा रोलर जहां-तहां से कटा रहता था। इसमें स्टेनलेस स्टील के छल्ले जुड़े रहते थे जिनके पीछे रबड़ की गद्दियां लगी रहती थीं। इन रोलरों के बीच मे पिसती हुई चाय की पत्तियों पर हथौड़ों जैसे अनेक प्रहार एक साथ होते थे। यह मशीन अधिक कारगर सिद्ध नही हुई। सन् 1931 के आस-पास कुछ स्थानों

पर इसका प्रयोग अवश्य हुआ था, लेकिन आज शायद ही किसी फैक्ट्री में इसका प्रयोग किया जाता हो।

सन् 1931 के आसपास जब सी० टी० सी० मशीन का प्रयोग आरम्भ हुआ, और इन मशीनों द्वारा तैयार की गई चाय जब इंगलैंड और योरुप के बाजारों में पहुंची, तो उपभोक्ताओं द्वारा वह पसंद नहीं की गई। परिणाम-स्वरूप सी० टी०सी० मशीन का प्रयोग बन्द हो गया। लेकिन पिछले दो तीन दशकों में चाय की मांग इतनी बढ़ गई है कि सी० टी० सी० मशीनों को पुनः काम में लिया जाने लगा है। सी० टी० सी० मशीनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये मशीनें चाय की निर्माण-प्रक्रिया को तीव्रता से पूरा करती हैं। सी०टी०सी०मशीन में 20 सेंटीमीटर की स्टेनलेस स्टील की दांतेदार छड़ें लगी रहती हैं। इनकी गति एक-दूसरे से भिन्न रहती है। इनकी गति का अनुपात प्रायः 1:10 रखा जाता है। इन दांतेदार छड़ों के कारण पत्तियों पर ऐसा दबाव पड़ता है कि पत्तियों की यथासम्भव अधिकतम कोशिकाएं टूट जाती हैं। पत्तियों को अलग-अलग दबाव के साथ मसलने के लिए रोलिंग प्रक्रिया को नियंत्रित रखा जा सकता है और आवश्यकतानुसार छड़ों के दबाव को कम-अधिक किया जा सकता है। यों तो सी० टी० सी० मशीनें रोलिंग मशीनों से अलग होती हैं, लेकिन चाय-निर्माण फैक्ट्रियों में सी० टी० सी० मशीनों के कक्ष को रोलिंग कक्ष ही कहा जाता है।

सी० टी० सी० मशीनों की निर्माण-प्रक्रिया का वर्णन करते हुए श्री हैरीसन ने एक जगह लिखा है—'मुर्झाए हुए पत्तियों को 40 मिनट मामूली दबाव या दबाव के बिना ही रोल किया जाता है। फिर इन पत्तियों को छानकर श्रेष्ठ भाग अलग कर लिया जाता है और मोटे भाग को दो-तीन बार और कभी-कभी चार बार सी० टी० सी० मशीन में डाला जाता है और छान लिया जाता है। आजकल तो सी० टी० सी० मशीन असम की लगभग हर फैक्ट्री में इस्तेमाल की जाती है।

हैरीसन द्वारा सी० टी० सी० मशीन की प्रक्रिया के सम्बन्ध में दिए गए वर्णन के बाद उसमें दो परिवर्तन हुए हैं। आजकल सबसे पहले तो रोलर की दांतेदार छड़ों की धार को अधिक तेज करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। 'क्रेश, टियर और कर्ल' (कुचलाई, चिथाई और कुंचन प्रक्रिया) आजकल 'कट और कर्ल' कटाई और कुंचन प्रक्रिया बन गई है। दूसरा परिवर्तन यह है कि रोलिंग प्रक्रिया की अवधि अब घटकर केवल 30 मिनट ही रह गई है।

लगभग चालीस वर्ष पहले एक समय ऐसा था जब सी० टी० सी० मशीनों द्वारा तैयार की गई भारतीय चाय इंगलैंड और योरुप के बाजारों में नापसन्द की जाती थी, और कहां आज है कि भारत चाय के निर्यात में अन्य सब देशों से आगे है और यहां की प्राय: सभी फैक्ट्रियों में चाय निर्माण-प्रक्रिया में सी० टी० सी० मशीनों का सर्वाधिक प्रयोग होता है।

चाय शोधन

आज उत्तम चाय-निर्माण के लिए शोधन-प्रक्रिया को जो महत्त्व दिया जाता है, उसे देखते हुए यह आश्चर्य का विषय ही है कि सन् 1880 के आसपास अनेक चाय-निर्माताओं की यह मान्यता थी कि उत्तम चाय तैयार करने के लिए शोधन-प्रक्रिया की कोई आवश्यकता नहीं है, यहां तक कि काली चाय तैयार करने के लिए भी वे इस प्रक्रिया का प्रयोग नहीं करते थे। सन् 1877 में सेम्युअल बेलडान ने लिखा था कि कुछ चाय-निर्माता रोलिंग की प्रक्रिया के तत्काल बाद चाय की पत्तियों को झुलसाते थे, कुछ उन पत्तियों का मामूली शोधन करते थे और कुछ चाय-निर्माता किसी हद तक शोधन-प्रक्रिया का उपयोग करते थे। चाय शोधन-प्रक्रिया उन दिनों अजीब-अजीब ढंग से की जाती थी। चाय-निर्माता फैक्ट्रियों में ऐसी अंधेरी कोठरियां

सांप, बिच्छू और तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े निवास करते थे। उन अंधेरी कोठरियों में ढेरों पत्तियां भर दी जाती थीं। उन कोठरियों में हवा आने-जाने की व्यवस्था न होने के कारण वहां की सीलन से पत्तियां सड़ने लगती थीं। उन कोठरियों में अत्यन्त दुर्गन्ध भरी रहती थी। यह तरीका कई फैक्ट्रियों में प्रयोग में लाया जाता था।

सैम्युअल बेलडन ने सन् 1877 के आसपास चाय शोधन-प्रक्रिया का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है :

'रोलिंग के बाद पत्तियों को बांस की बनी चांग पर रखवा दिया जाता था। यह ऊंचाई में चाय रोलिंग मशीन के बराबर या उससे कुछ ऊंची होती थी। इस प्रकार रखी चाय की पत्तियों की शोधन-प्रक्रिया चलती रहती थी। शोधन-प्रक्रिया में पत्तियों को दो-तीन बार धीरे-धीरे हिलाते थे। इस प्रकार रोलिंग मशीन से आई पत्तियों और शोधन-प्रक्रिया के अधीन पत्तियों के अन्तर का तत्काल पता लग जाता था।

सन् 1893 के आसपास सब जगह प्रायः एक जैसा तरीका अपनाया जाने लगा। इसका वर्णन श्री केलवे बैम्बर ने इस प्रकार किया है :

'शोधन-प्रक्रिया में चाय की पत्तियों की रोलिंग के बाद उन्हें रखने के लिए एक अलग कमरे की आवश्यकता है। ऐसे कमरे के समीप पत्तियों को गर्म करने वाली मशीनों की तपिश नहीं पहुंचनी चाहिए, और दो छतें डालकर उन्हें सूरज की गरमी से बचाना चाहिए; क्योंकि यदि कमरा गर्म होता है तो पत्तियों में रंग आने, और उनका आक्सीकरण होने की सम्भावना रहती है। इस कमरे का फर्श सीमेण्ट का बना हुआ और ढलानदार होना चाहिए, ताकि उसे धोने और साफ करने में कोई कठिनाई न हो। इस कमरे में ऐसी व्यवस्था होनी [illegible] जिससे [illegible] ताप को कम किया जा सके।'

[illegible] के मौसम के आरम्भ में जब प्रायः ठंड होती है और

पत्तियों का अच्छा रंग ग्रहण करना सम्भव नही होता है तो ऐसी परिस्थितियों में पत्तियों को फर्श की बजाए टाट की चटाइयों पर रखने से आक्सीकरण प्रचुर मात्रा में होता है, और इस प्रकार पत्तियों को मोटी परतों में रखने और तब तक पत्तियों के ढेर को हिलाने से पत्तियों में रंग आ जाता है।

रोलिंग प्रक्रिया के दौरान चाय की पत्तियों को मसलने मरोड़ने से उनके जो गुण नष्ट हो जाते हैं, उन्हें पुनः संयोजित करने के लिए ही चाय शोधन-प्रक्रिया की जाती है। इस प्रक्रिया के बीच चाय की पत्तियों का आंशिक आक्सीकरण किया जाता है और चाय की पत्तियों का रंग परिवर्तन होता है। पत्तियां चमकीले लाल और तांबई रंग की हो जाती हैं। चाय शोधन के सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित है कि कम शोधन से चाय पीने में अधिक तेज होती है, और शोधन-प्रक्रिया समुचित ढग से होने पर वह पीने में कम तेज होती है, और उसका रंग गहरा होता है।

आक्सीकरण के लिए आरम्भ में ड्रमों के साथ आक्सीजन के सिलिंडरों को जोड़कर रासायनिक क्रिया करने के प्रयत्न किए गए। किन्तु महंगा होने के कारण यह ढंग व्यावहारिक नहीं सिद्ध हुआ, अतः यह प्रचलित नहीं हो सका। शोधन-प्रक्रिया में चाय की पत्तियों को फैलाने के लिए अच्छे ढंग की चटाइयों, लकड़ी के तख्तों, लोहे, स्टील, शीशे और एल्यूमिनियम की चादरों का उपयोग किया जाता रहा है। यों तो पहले सीमेण्ट के फर्श को आक्सीकरण और शोधन-प्रक्रिया के लिए काफी अच्छा समझा जाता था, लेकिन उसकी तुलना में धातु की चादरों को और भी अच्छा समझा जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सीमेण्ट के फर्श की तुलना में धातु की चादरें आसानी से साफ की जा सकती हैं और उन पर कीटाणुओं आदि की उत्पत्ति की सम्भावना भी कम रहती है। शोधन-कक्षों में आर्द्रकर उपकरणों का भी प्रयोग किया जाता है। जब हवा में खुश्की बढ़ जाने के कारण पत्तियों का ऊपरी भाग काला पड़ने लगता है तो वातावरण की सापेक्ष आर्द्रता का प्रभाव

शोधन-प्रक्रिया के अन्तर्गत पत्तियों पर पड़ जाता है। शोधन-कक्षों में आर्द्रकर उपकरणों के उपयोग के पीछे यह उद्देश्य निहित रहता है कि कक्ष के तापमान को भी कम किया जाए, न कि कक्षको केवल आर्द्रता बढ़ाई जाए।

प्रकाश का शोधन-प्रक्रिया पर पड़ने वाला प्रभाव नहीं के बराबर है, न वह अच्छा होता है, न बुरा। सन् 1900 के आस-पास खिड़कियों पर नीले, लाल और रंग-बिरंगे कागज लगा दिए जाते थे ताकि विशेष प्रकार की रोशनी पड़ने से चाय को अच्छी पत्तियां तैयार हो सकें। चाय की पत्तियों पर सीधी पड़नेवाली तेज सूर्य-किरणों का प्रभाव बुरा ही होता है, क्योंकि इससे हवा का ताप बढ़ता है। शोधन-प्रक्रिया पर अधिक ताप का बुरा प्रभाव पड़ता है, इसलिए आर्द्रकर उपकरणों या धुध-कक्षों का प्रयोग किया जाता है।

आजकल इस प्रक्रिया के द्वारा चाय का आंशिक आक्सीकरण करने का प्रयत्न किया जाता है। रोलिंग के बाद पत्तियों को शोधन-कक्ष में लाया जाता है और वहां उन पत्तियों को एल्यूमिनियम या शीशे की चादरों पर फैला दिया जाता है। इस शोधन-कक्ष में ताप को नियंत्रित रखने के लिए आर्द्रकर उपकरणों की व्यवस्था रहती है। इन पत्तियों की आक्सीकरण-प्रक्रिया कितने समय तक चलनी चाहिए, और इस सम्बन्ध में किस सीमा तक पत्तियों का शोधन अपेक्षित है, इस विषय में कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं की जा सकी है। इन पत्तियों का शोधन अपेक्षित मात्रा तक हो जाने का पता उन्हें देखकर या सूंघकर लगाया जा सकता है। फिर भी सामान्यतः दो से लेकर तीन घण्टे तक शोधन-प्रक्रिया चलती है। शोधन-प्रक्रिया पर चाय की गुणवत्ता निर्भर करती है। यदि शोधन-प्रक्रिया अपेक्षित मात्रा तक नहीं चलती तो तेज चाय तैयार होती है, और शोधन-प्रक्रिया लम्बी होने से चाय कम तेज बनती है। अतः उत्तम चाय तैयार करने के लिए सतुलित शोधन-प्रक्रिया अपेक्षित है।

चाय को सुखाना या चाय को गरम करना

जब पत्तियों का रंग बदल जाता है तब चाय निर्माण-प्रक्रिया का चौथा चरण *आरम्भ होता है। पत्तियों को गरम करने की* प्रक्रिया में यही उद्देश्य निहित रहता है कि पत्तियों के आक्सीकरण को रोककर, पत्तियों में 5 प्रतिशत तक नमी छोड़ दी जाए और शेष सब नमी सुखा दी जाए।

चाय के इतिहास में सन् 1861 से पहले चाय सुखानेवाले उपकरण का वर्णन कहीं नहीं मिलता। उन दिनों की रीति के अनुसार चाय की पत्तियां बांस की छलनियों में जमा दी जाती थीं। ये छलनियां कोयले की ऐसी आंच पर रख दी जाती थीं, जिसमें धुआं नहीं होता था। इस प्रकार छलनियों पर रखी उन शोधित पत्तियों की नमी सूखने लगती थी। यह प्रक्रिया 15 मिनट तक चलती थी और अपेक्षित सीमा तक पत्तियों की नमी सूख जाती थी। काफी दिनों तक यही पद्धति प्रयोग में लाई जाती थी।

चाय की पत्तियों को सुखाने के लिए मशीन का आविष्कार करने की दिशा में कई व्यक्ति प्रयत्नशील रहे, पत्तियों को सुखाने के लिए भाप का उपयोग आरम्भ हुआ। आरम्भ में यह धारणा-प्रचलित थी कि चाय की पत्तियों को गरम करने से उनके गुण नष्ट हो जाते हैं, लेकिन यह विरोध अधिक दिनों तक नहीं चला; क्योंकि ताप को समुचित रखकर पत्तियों की अपेक्षित मात्रा तक नमी सुखा देने से पत्तियों की सुगन्ध और गुणवत्ता को कोई क्षति नहीं पहुंचती।

आज प्रायः हर फैक्टरी में चाय की पत्तियों को सुखानेवाली मशीन का प्रयोग होता है। यह मशीन आकार में चाय की मशीनों में सबसे बड़ी होती है। चाय की पत्तियों को सुखाने वाली स्वचालित मशीन इस्पात के बने हुए एक बड़े उष्ण-कक्ष की शक्ल की होती है, जिसमें कई ट्रे एक साथ रखने का स्थान बना रहता है। ट्रे में चाय की पत्तियां फैला दी जाती हैं। ये धीमी गति से ऊपर-नीचे होती रहती हैं और उस कक्ष में प्रवाहित गरम हवा लगा-

तार चाय की पत्तियों को सुखाने का काम करती रहती है। ताप को समुचित बनाए रखना इस प्रक्रिया के लिए अत्यावश्यक है; क्योंकि अधिक ताप होने से पत्तियों के झुलस जाने, और कम ताप होने से पत्तियों के ठीक प्रकार से न सूखने की सम्भावना बनी रहती है।

पहली बार इस प्रकार गर्मी पहुंचाने से चाय की शोधित पत्तियों की नमी का तीन चौथाई भाग निकल ही जाता है। दोबारा गरम करने से पहले इन पत्तियों को ठंडा कर लिया जाता, दूसरी बार गरम किए जाने पर इन पत्तियों की सारी नमी सूख जाती है। चाय की पत्तियों को सुखाने के लिए पहली बार गरम करने की प्रक्रिया बीस से पच्चीस मिनट तक चलनी चाहिए, और दूसरी बार पत्तियों का दस से पन्द्रह मिनट तक गरम करना चाहिए। पहली बार गरम करने की प्रक्रिया में पत्तियों को गर्म करने का समय और ताप निर्धारित रहता है, लेकिन चाय की पत्तियों की तहों में भिन्नता रह सकती है और भीतरी ताप कई प्रकार का रखा जा सकता है। दूसरी बार पत्तियों को गर्म करने में यह उद्देश्य रहता है कि पत्तियों की नमी को लगभग पूरी तरह ही सुखा दिया जाए।

असम में पत्तियों के कुम्हलाने के बाद यदि नमी 75 प्रतिशत बची रहती है तो रोलिंग प्रक्रिया में वह 66 प्रतिशत रह जाती है पहली बार गरम करने से नमी घट कर 15 प्रतिशत रह जाती है। और दूसरी बार गरम करने से 1 से 3 प्रतिशत तक पहुंच जाती है। पत्तियों को छानते समय यह नमी बढ़कर 6 प्रतिशत हो सकती है। पैकिंग से पूर्व भी पत्तियों को 70° सें० (150° फा०) ताप पर 10 मिनट तक गरम किया जाता है जिससे नमी घटकर पुनः 3 प्रतिशत हो जाती है। इसके बाद सूखी जगह पर रखकर पत्तियों की पैकिंग का काम किया जाता है, इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है कि पत्तियों में नमी बढ़ने न पाए।

चाय सुखाने की मशीन में ईंधन के रूप में कोयले, लकड़ी या तेल का उपयोग होता है। इस काम लिए बिजली का भी उपयोग करने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन बिजली काफी महगी बैठती है इसलिए बिजली का उपयोग प्रायः नही किया जाता है।

सन् 1937 से असम की अधिकतर फैक्ट्रियों मे चाय की पत्तियों को सुखाने के लिए उपयुक्त रेडियेटरो में भाप का उपयोग किया जाता है। फैक्टरो के इजनों को चलाने के लिए जो भाप तैयार की जाती है, उसे ही चाय की पत्तियों को सुखाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। वैज्ञानिक आधार पर इस पद्धति को कार्यान्वित किया जाता है जिससे ईंधन में बचत होती है। चाय की पत्तियों को सुखाने की प्रक्रिया में सुधार हुआ है और कोयले या लकड़ी के जलाने से फैक्ट्रियों में धुआं भर जाया करता था, उससे बचा जा सका है। भाप द्वारा गरमी पहुंचाने से चाय सुखाने की मशीनों में अब उष्ण कक्षों की आवश्यकता नहीं रही है।

पत्तियों को छानना

इन सूखी हुई पत्तियों को छानने का काम असम में पहले बास की छलनियों द्वारा किया जाता था। इन छलनियों मे 2.5 सेंटीमीटर में 4, 6 7, 9, 10, 12 और 16 सूराख हुआ करते थे। सन् 1870 में पीतल की छलनियां प्रयुक्त होने लगीं। उन दिनों एक व्यक्ति 36-37 कि०ग्रा० चाय दिन-भर में छान पाता था और साथ ही डडियों आदि को बिलगाने के लिए कई लड़कों की भी आवश्यकता होती थी। आधुनिक चाय छानने की मशीन एक घंटे में 455 कि० ग्रा० चाय छान सकती है।

चाय निर्माण-प्रक्रिया के इस अतिम चरण में चाय की पत्तियों को छान कर अलग कर लिया जाता है, और फिर इन्हें अलग-अलग किस्मों में बाट लिया जाता है। चाय की कुछ प्रसिद्ध किस्मों के नाम इस प्रकार है—नारंगी पेको, पेको, भूरा आदि। चाय की ये किस्में पत्तियों के आकार के आधार पर बनी है उनकी गुणवत्ता के आधार पर नहीं।

5

चाय की किस्में

पानी को छोड़कर, अन्य सब पेयों की अपेक्षा चाय का ही उपयोग सर्वाधिक होता है। रंग और सुगन्ध की दृष्टि से अलग-अलग स्थानों की चाय में कम या अधिक भेद रहता है, लेकिन निर्माण-प्रक्रिया के आधार पर चाय की निम्नलिखित तीन किस्में है :

1) काली चाय (शोधित चाय)
2) हरी चाय (अशोधित चाय)
4) ऊलोंग चाय (अर्ध-शोधित चाय)

चाय की उपर्युक्त किस्मों में से काली चाय व्यापारिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और संसार के चाय-उत्पादक देशों, अर्थात् भारत, लंका, इंडोनेशिया आदि में इसी चाय का अधिक उत्पादन होता है।

काली चाय तैयार करने की प्रक्रिया के 4 चरण है— पत्तियों को सुखाना, पत्तियों की रोलिंग, पत्तियों का शोधन और उन्हें गरम करना।

उपर्युक्त रंग की चाय तैयार करने का ढंग काफी पुराना है और इसीलिए इसे 'रूढ़ प्रणाली' कहा जाता है। भारत के लगभग सभी चाय-बागानों में इसी प्रणाली का उपयोग किया जाता है। कुछ वर्षों से काली चाय बनाने के लिए निर्माण-प्रक्रिया के रोलिंग चरण में रोलिंग मशीन के स्थान पर सी० टी० सी०

मशीन का अधिकाधिक उपयोग किया जाने लगा है, अन्यथा इस रूढ़ प्रणाली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

लेग-कट चाय

उत्तर-पूर्वी भारत के तराई तथा कछार के कुछ चाय-बागानों में लेग-कट चाय तैयार की जाती है। लेग-कट दरअसल चाय तैयार करने की एक प्रणाली है, जिसमे चाय की पत्तियों को कुम्हलाने की प्रक्रिया इसलिए नहीं हो पाती है कि उत्तर-पूर्वी भारत के ये क्षेत्र अत्यधिक आर्द्रतापूर्ण है, और यहां की चाय की पत्ती इतनी सजीव होती है कि तत्काल अच्छे रंगदार तरल का रूप धारण कर लेती है।

चाय की बिना कुम्हलाई हुई पत्तियों को रोलिंग करना कठिन होने के कारण इन पत्तियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है, और इस कार्य को करने के लिए गडासे की तरह की जो मशीन प्रयोग में लाई जाती है उसे लेग-कटर कहते हैं। इसीलिए, इस प्रक्रिया से जो चाय तैयार होती है उसे लेग-कट चाय कहा जाता है। इन पत्तियों को छोटे-छोटे टुकड़ो में काटने के बाद उन्हें धीमे-धीमे रोल किया जाता है, और कुछ देर के लिए इनका शोधन करने के बाद, उन्हें पूरी तरह से गरम किया जाता है।

पहले इस चाय को पसन्द नहीं किया जाता था; लेकिन अब अपने शीघ्र ही रंगीन तरल में परिवर्तित हो जाने के गुण और सुगन्ध के कारण, यह चाय इंगलैंड में काफी पसन्द की जाने लगी है। सन् 1959 में 180 लाख कि॰ग्रा॰ लेग-कट चाय का उत्पादन हुआ था और इसमें से अधिकतर चाय इंगलैंड और अमेरिका भेजी गई थी।

हरी चाय

चीन और जापान में प्रायः हरी चाय का ही उत्पादन होता

है। संसार में चाय पीनेवालों की आदत में काफी परिवर्तन हो जाने के कारण, और विशेष रूप से विश्वयुद्ध के बाद, हरी चाय का महत्त्व काफी कम हो गया है। फिर भी अफगानिस्तान, ईरान और अमेरिका के बाजारों में इसकी कुछ मांग है, जिसके लिए उत्तर भारत में कुछ मात्रा में हरी चाय का निर्माण किया जाता है। हरी और काली चाय में मूलतः शोधन का फर्क है। हरी चाय का निर्माण करने के लिए चाय के पौधों से पत्तियां तोड़ते समय डंडियां नहीं तोड़ी जातीं, और पत्तियों को अपने-आप ही कुम्हला जाने देने के बजाय उन्हें भाप से गरम किया जाता है। इस प्रकार भाप द्वारा कुम्हलाई हुई पत्तियां रोलिंग के लिए तैयार हो जाती हैं, लेकिन इससे यह काली नहीं होतीं, और शोधन-प्रक्रिया से बच जाती हैं। इसके बाद इसकी रोलिंग की जाती है और काली चाय की तरह ही इसे सुखाया जाता है। लेकिन रोलिंग और चाय की पत्तियों को गरम करने की प्रक्रिया के दौरान इन पत्तियों को शोधन का समय नहीं दिया जाता। चाय की ये पत्तियां अपना हरा रंग इसलिए कायम रखती हैं कि इनका शोधन नहीं हो पाता। इन पत्तियों में काली चाय की पत्तियों के बराबर सुगन्ध तथा महक नहीं होती।

ऊलोंग चाय

यह चाय काली और हरी चाय के संयोजन से बनती है और इसीलिए इसे अर्ध-शोधित चाय कहते हैं। चाय की पत्तियों का शोधन पूरी तरह नहीं होने दिया जाता, और ये पत्तियां मामूली शोधन के बाद रोलिंग और गरम करने की प्रक्रिया से गुजरती हैं। इन पत्तियों का कुछ मात्रा में ही आक्सीकरण होने के कारण इनमें से सेब जैसी सुगन्ध आती है। ऊलोंग चाय अमेरिका में विशेष रूप से पसन्द की जाती है और यह चाय आजकल केवल फार्मोसा में ही बनती है। चाय की उपर्युक्त किस्में निर्माण-प्रक्रिया के अन्तर और शोधन पर आधारित हैं।

आस्वादक

चाय-आस्वादक द्वारा चाय का विश्लेषण करते हुए उसका मूल्यांकन किया जाता है। उसके द्वारा बताया गया विश्लेषण चाय के तरल के स्वाद पर आधारित होता है और उसमें चाय की सुगन्ध का भी वर्णन होता है। सुगन्ध चाय की एक ऐसी विशेषता है, जिसका रासायनिक विश्लेषण करना बहुत कठिन है।

व्यापारिक दृष्टि से आस्वादक का विश्लेषण तथा मूल्यांकन अपने-आप में पर्याप्त होते हुए भी, चाय-निर्माण को वैज्ञानिक दृष्टि से नियंत्रित रखने के लिए चाय की विशेषताओं के संबंध में अधिक सुस्पष्ट विवरण की व्यवस्था करना अपेक्षित है। लंदन में सन् 1879 में चाय के रासायनिक विश्लेषण के संबंध में लिखते हुए एक वैज्ञानिक ने बताया था कि वह दिन दूर नहीं है जब चाय का व्यापार पूर्णतया चाय के विश्लेषण पर निर्भर होगा। तब की तुलना में आज चाय की रासायनिक प्रकृति के संबंध में अधिक जानकारी उपलब्ध होने के बावजूद, आज भी चाय के व्यापारिक क्षेत्रों में आस्वादक का महत्त्व पहले जितना ही कायम है; और अभी वह दिन बहुत दूर है, जब चाय का रासायनिक विश्लेषण आस्वादक के विश्लेषण का स्थान ग्रहण कर पाएगा।

एक आस्वादक एक दिन में चाय के सैकड़ों नमूनों का विश्लेषण कर सकता है और ऐसा करने में वह चाय-बागान विशेष की पृष्ठभूमि के संबंध में अपने ज्ञान और अनुभव का लाभ भी उठाता है। रासायनिक विश्लेषण के आधार पर चाहे किसी विशेष चाय को अच्छा या बुरा माना जाए, लेकिन आस्वादक चाय के नमूने का मूल्यांकन प्रायः चाय के तरल की सुगंध के आधार पर ही करता है।

स्वाद और सुगंध

जब आस्वादक चाय की चुसकी लेता है तो चाय का तरल

जिह्वा और मसूड़ों तक, और चाय की सुगंध मुंह के पिछले भाग में होती हुई घ्राण-तंत्रिका तक पहुंच जाती है। तदुपरांत चाय के तरल को आस्वादक चखता है, महसूस करता है और सूंघता है।

मुख्यतया चाय के स्वाद को आस्वादक जिह्वा और मुख के अन्य भागों द्वारा अनुभव करता है। चाय का स्वाद चार प्रकार का होता है—नमकीन, खट्टा, मीठा और कड़वा। मिठास जिह्वा की नोक और कड़वापन जिह्वा के पिछले भाग द्वारा अनुभव किया जाता है। नमकीन स्वाद का पता जिह्वा की नोक और जिह्वा के अगले पार्श्व भाग द्वारा तथा खटास का पता जिह्वा के पिछले भागों द्वारा लगाया जाता है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि चाय की सुगंध का पता घ्राण-तंत्रिका द्वारा लगाया जाता है। इस तंत्रिका के बिना व्यावहारिक दृष्टि से दो वस्तुओं के स्वाद के भेद का पता लगाना असम्भव है। आस्वादक की घ्राण-तंत्रिका सामान्य मनुष्यों की तुलना में अधिक सूक्ष्मग्राही होती है।

चाय-आस्वादन

स्वाद का पता लगाने के हेतु, सूक्ष्मग्राही जिह्वा और घ्राण-तंत्रिका के अतिरिक्त चाय-आस्वादक के लिए अपने कार्य में प्रवीण होने के साथ-साथ सहज सूझबूझ वाला होना भी अपेक्षित है। चाय का आस्वादन करने और उसका वर्णन प्रस्तुत करने के साथ ही, विशेष प्रकार की चाय की जानकारी और तत्संबंधी लम्बा अनुभव होने पर ही आस्वादक द्वारा चाय का मूल्यांकन किया जा सकता है। मान लीजिए कि 1,800 किलोग्राम चाय की 36 पेटियां हैं। नमूने के तौर पर एक पेटी से 1 किलोग्राम पत्तियां ली जाती हैं और फिर उस नमूने में से कुछ पत्तियां लेकर चाय तैयार की जाती है। यह चाय वैसी चाय नहीं होती, जैसी घरों में पी जाती है। इसे चाय का रस कहना ही ठीक होगा।

मजदूर स्त्रियां पत्तियां फैक्ट्री ले जा रही हैं

आस्वादक के लिए चाय का फांट पच्चीस पैसे के सिक्के के वजन के बराबर चाय की पत्तियां लेकर तैयार किया जाता है। विशेष प्रकार के मग में पत्तियां रखकर ऊपर से गरम पानी डाला जाता है। फिर मग पर ढक्कन लगाकर उसे 6 मिनट तक रखा रहने देते हैं। तदुपरांत मग से आकार में बड़े प्याले में चाय का वह फांट छान लिया जाता है। प्याले के सामने वह मग रख दिया जाता है। मग के ऊपर उबली हुई चाय की पत्तियों सहित, ढक्कन रखा रहता है। मग के पीछे सूखी पत्तियों का नमूना डिब्बे में भरकर रखा जाता है। डिब्बे पर उस चाय

से संबंधित चाय-बागान का नाम, बीजक संख्या, ग्रेड तथा अन्य विवरण लिखा रहता है। इतनी सब व्यवस्था हो जाने के उपरांत आस्वादक द्वारा चाय के तरल का आस्वादन किया जाता है। कुछ ही सैकेंड में आस्वादक अपना कार्य आरम्भ कर देता है।

चाय की सूखी पत्तियों की व्याख्या आस्वादक द्वारा पत्तियों के रंग, मरोड की मात्रा, ग्रेड आदि के संदर्भ में की जाती है। डंठलों और चूरे की मात्रा आदि का वर्णन भी किया जाता है।

तदुपरांत फांट की व्याख्या रंग, एकरूपता, चमक और सुगंध के आधार पर की जाती है। फिर आस्वादक प्याले से अथवा चम्मच की सहायता से फांट की चुस्की भरता है। चुस्की लेकर आस्वादक जिह्वा के चारों ओर मुंह में तरल को घुमाता है और फिर तरल को थूकदान में डाल देता है। इतनी ही देर में आस्वादक जिह्वा की नोक, जिह्वा के निचले, बराबर और तालू के पास के भागों द्वारा चाय के स्वाद को अनुभव करता है और फिर तरल का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार आस्वादक तरल के विभिन्न गुणों, जैसे कि खटास, मिठास, नमकीनपन आदि का अनुभव करता है। चाय का आस्वादन बिना दूध मिलाए किया जाता है। परन्तु चाय की उपयोगिता का पता लगाने के लिए सम्मिश्रणकर्ता तरल में दूध मिलाते हैं।

दूध मिलाने पर यदि तरल में आकर्षक रंग आ जाता है तो इससे यह निश्चित हो जाता है कि चाय निर्माण-प्रक्रिया में ऐसी चाय बनाने का प्रयत्न हुआ है जिसमें स्फूर्तिदायकता, शक्ति और गुण का उत्तम सम्मिश्रण है। ये तीनों विशेषताएं पत्तियों में पालीफिनोलों की मात्रा पर निर्भर होती हैं; और यदि एक गुण बढ़ता है तो अन्य गुणों में कमी हो जाती है। अतः उत्तम तथा उपयोगी चाय में इन तीनों गुणों का उपयुक्त सम्मिश्रण अपेक्षित होता है।

चाय के तरल की विशेषताएं एक सीमा तक काफी और शराब के समान होती हैं, और उनका वर्णन करने के लिए चाय-

फैक्टरी में जाई जाती पत्तियां
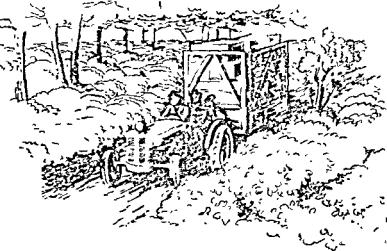
तास्वादक समान शब्दावली का उपयोग करते हैं।

विभिन्न देशों में चाय की जो आदतें प्रचलित हैं, उनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

तिब्बत—तिब्बत में यदि आप किसी के घर जाएं तो वह आपको अपने साथ मक्खन-चाय का एक प्याला पिलाए बिना नहीं जाने देगा।

यह मक्खन-चाय, चाय का फांट, मक्खन और नमक का मेला-जुला एक विशेप प्रकार का काढ़ा होता है। इस काढ़े को निम्नलिखित रीति से तैयार किया जाता है :

बांस के एक लम्बे खोल में केन स्ट्रेनर द्वारा उबलता हुआ पानी उंडेला जाता है। इसमें काफी मात्रा में मक्खन और नमक मिलाया जाता है। इस मिश्रण को लकड़ी की एक मूसली से पूरी तरह घोटा जाता है, और उसके बाद तैयार तरल को लकड़ी की कटोरियों में परोसा जाता है।

ईरान—ईरान में चाय लगभग सभी अवसरों पर दी जाती है। यह अधिकतर चांदी के होल्डरों मे छोटे प्यालों में दी जाती है। प्रान्तों में चाय अधिकतर कोयलों पर धातुओं के बर्तन में फैला दी जाती है। गिलासों मे यह कुछ गाढ़ी, काली और कड़वी लगती है।

लद्दाख (भारत)—गैरट्रुड लिटिल के असम रिव्यू और टी न्यूज में कुछ समय पूर्व प्रकाशित एक लेख के अनुसार लद्दाखी अपने दैनिक भोजन में नियमित रूप से चाय का उपयोग करते हैं। वे पौष्टिक बनाने के लिए उसमें मक्खन मिलाते हैं और गाढ़ा करने के लिए उसमे विशेष प्रकार के फूल डालते है।

इण्डोनेशिया—इण्डियन मेडिकल मिशन के एक सदस्य ने एक लेख में लिखा है—"इण्डोनेशिया वाले दूध या दूध की कोई वस्तु चाय के तरल में नहीं मिलाते। अधिक शक्कर के साथ दूध के बिना गर्म चाय वहां बहुलता से उपयोग को जाती है।"

अरब—एक विदेशी यात्री ने अरब देशों मे भ्रमण करने के बाद अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं—"चाय उबलने से कुछ पहले चाय के बर्तन में कुछ पानी डाल दिया जाता है और शीघ्रता से उसमें सूखी चाय मिला दी जाती है। तत्पश्चात् अधिक मात्रा मे चीनी डालकर उसे अच्छी तरह से मिलाया जाता है। उसके बाद चाय के बर्तन को आग पर चढ़ा दिया जाता है, ताकि उबलने से सभी चीजों का रंग आ जाए। जैसे ही यह उबलती है इसे लगभग 60 सेंटीमीटर की ऊंचाई से गिलासों में डाल दिया जाता है और जैसे ही तीसरा गिलास भर जाता है, तीनों ही गिलासों की पूरी चाय को पुनः बर्तन में डाल लिया जाता है। अन्तर केवल इतना रहता है कि इस समय किसी एक गिलास में थोड़ी सी चाय बच जाती है। अब तीसरी बार चाय डाली जाती है। यह क्रिया इसलिए की जाती है कि यह आश्वासन रहे कि हम सब मित्र हैं और हमें किसी प्रकार आशंकित नहीं होना चाहिए।"
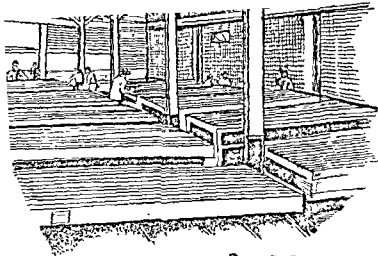
चाय के शोधन की प्रक्रिया

जापान—जापान में चाय की पत्तियां थोड़े गूदे के साथ गर्म ानी में मिला दी जाती हैं और केवल विशेष अवसरों पर ही ना हुआ मिश्रण मिलाया जाता है। एक प्रेक्षक ने चाय बनाने ी क्रिया-विधियों को देखने के बाद कहा—"सारी क्रिया-विधि ं 2 घंटे से 3 घंटे तक लगते हैं। अधिकतर समय पूर्णतया शांति हती है और उबलता हुआ पानी नहीं बल्कि गर्म पानी हरी चाय h पाउडर के ऊपर डाल दिया जाता है।" प्रेक्षक ने आगे ताया है—"जापानी चाय बनाने से पूर्व शायद ही कभी पानी उबालते हों। वास्तव में वह इसे बिना उबले पानी से ही बनाना सन्द करते हैं। वे दूध और शक्कर नहीं मिलाते।"

बर्मा—न्यूयार्क के टी एण्ड काफी ट्रेड जर्नल में एक संवाद-दाता ने लिखा है—"बर्मा के शान राज्यों के मूल निवासी—चाय की पत्तियों को बांस की नली से भाप देते हैं और उन्हें

नमक के पानी में कुछ महीने रखते हैं। जब उन्हें कोई कठिन कार्य करना होता है, तब वे उचित मात्रा में इन खुशबूदार भीगी पत्तियों को निकाल कर खा लेते हैं। जितनी मात्रा में उन्हें उत्तेजना की आवश्यकता होती है उन्हें उतनी मात्रा कैफीन से मिल जाती है। बर्मा के कुछ स्थानों में नव-विवाहित युगल, जीवन के आनन्द में वृद्धि करने के लिए चाय की पत्तियों से तेल में टपकाए गए फांट का प्याला पीते हैं।

चीन—चीनियों के चाय पीने के लिए विस्तृत क्रिया-पद्धतियां बनाई हुई हैं। इसके नियम-विनियम भी बनाए हैं। पांचवां नियम इस प्रकार है—"साढ़े तीन चुस्कियों में चाय पीने पर, आखिरी बूंद के साथ प्रशंसापूर्ण आवाज करनी होती है। जहां होंठ छूते हैं, उस किनारे को साफ करने के बाद चाय पीने वाला कटोरे की डिजाइन को देखता है, जिससे उसे सुरुचिपूर्ण चिन्तन के लिए समय मिल जाता है। यह कटोरा एक विशेष प्रकार का प्याला होता है जिसपर ढक्कन तो होता है, लेकिन कोई हैंडल नहीं होता, और प्याले के अन्दर पहले से ही चाय पड़ी होती है। यहां पर भी दूध और शक्कर का प्रयोग नहीं किया जाता। चीन के अन्दर दूसरा प्याला देने का अर्थ शिष्टरूप में यह कहना होता है कि अब मेहमानों के जाने का समय हो गया है।

थाईलैण्ड—थाईलैंण्ड के लोग चाय को चबाते हैं और इसे बिल्ली की तरह 'म्याऊं-म्याऊं' कहते हैं। वे इसमें नमक और दूसरे मिर्च-मसाले भी मिलाते हैं। थाईदेश में अब चाय पीने के आधुनिक तरीके अपना लिए गए हैं, अतः अब वहां इस आदत को सामान्य रूप में प्रचलित नहीं माना जा सकता।

अमेरिका—संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में चाय की खपत दो पृथक् पेयों—गर्म चाय और बर्फ चाय—के रूप में होती है। बर्फ चाय अधिकतर गर्मियों के तेरह सप्ताहों के दौरान पी जाती है और यह लैमन अथवा मिण्ट के साथ दी जाती है। अमेरिका में चाय के बारे में दूसरी विशेष बात है—चाय की थैली, जिसे प्याले
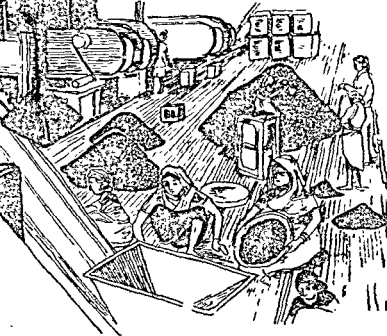
छानकर पत्तियां अलग-अलग की जा रही हैं

अथवा चाय के बर्तन में पूरे खौलते पानी में डुबो देते है, ताकि उसका अर्क पूरी मात्रा में निकल आए।

रूस—रूस मे चाय अधिकतर लम्बे गिलासो में दी जाती है, लेकिन इसमें दूध नहीं डाला जाता। इसे जैम, मधु अथवा शक्कर से मीठा बनाया जाता है, जूस और रम के भी अक्सर उपयोग किए जाते हैं। समोवर से, जो एक प्रकार का वायलर होता है, चाय का गर्म पानी लगातार लिया जाता है, और इसमें पार्टी समाप्त होने तक चाय और पानी बार-बार डालते रहते हैं। कोई भी अवसर हो, समोवर आकर्षण का केन्द्र होता है।

चाय आस्वादक

फ्रांस—चाय में दूध मिलाने का रिवाज सर्वप्रथम फ्रांस में 17वीं सदी में आरम्भ हुआ था।

इंग्लैण्ड—इंगलैण्ड में सर्वप्रथम चाय का पीना 1657 में आरम्भ हुआ। उस समय चाय पीने का कोई निश्चित तरीका नहीं था। उबली हुई पत्तियों को चबाया जाता था और काढ़े को अलग कर दिया जाता था। लोगों को चाय बनाने के सही तरीके का पता बाद में चला।

6

चाय मशीनरी का विकास भारतीय संदर्भ में

आज भी भारत में चाय-निर्माण की परम्परागत पद्धति की छः प्रक्रियाओं में पांच वही हैं जिनका उपयोग चाय के उन चीनी कारीगरों द्वारा किया जाता था जो सदियों में सन् 1837 में श्री ब्रूस की देख-रेख में काम करते थे। श्री ब्रूस भी चाय-निर्माण में मशीनों के प्रयोग के महत्त्व को समझते थे। चूंकि असम में इस तरह की सुविधाएं उपलब्ध होने की कोई संभावना उन दिनों दिखाई नहीं देती थी, इसलिए यह सुझाव रखा गया कि हरी पत्तियां ही कलकत्ता या इंगलैंड भेजी जाएं और वहां अंग्रेज मशीनरी द्वारा चाय की पत्तियों को रोल करें, छान कर साफ करें और उत्तम चाय तैयार करें।" यह सुझाव स्वीकार नहीं किया गया। लगभग तीस वर्ष और बीत गए। सन् 1867 में असम कम्पनी लि०, नज़ीरा, के कम्पनी इंजीनियर श्री जेम्स सी० किन्माण्ड ने चाय उद्योग को पहली रोलिंग मशीन भेंट की, और तभी पहली बार चाय निर्माण-प्रक्रिया में मशीन का उपयोग सफलतापूर्वक आरम्भ हुआ।

आज स्थिति यह है कि चाय क्षेत्र में हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या है श्रमिक शक्ति की अधिकता, जबकि सौ वर्ष पहले स्थिति इससे बिलकुल विपरीत थी। 30 व्यक्तियों द्वारा चुनी गई चाय की पत्तियों को हाथों से मसलने के लिए 16 व्यक्तियों की

आवश्यकता होती थी, और दिन-भर परिश्रम करने के बाद मुश्किल से 37-38 कि०ग्रा० पक्की चाय तैयार हो पाती थी। उन दिनों सबसे पहले कोशिश इस बात की हुई थी कि चाय की पत्तियों को मसलने का कोई ऐसा उपकरण तैयार किया जाए, जिससे चाय निर्माण-प्रक्रिया सुविधाजनक ढंग से की जा सके। इस दिशा में सबसे पहला कदम आज से सौ वर्ष पहले श्री सी० ए० ब्रूस ने उठाया था।

चाय के इतिहास में जिस भी व्यक्ति की रुचि है, वह यह बात भली भांति जानता है कि श्री सी० ए० ब्रूस अनेक प्रकार से इस उद्योग के पथ-प्रदर्शक थे। चीन के चाय व्यापारियों के एकाधिकार के विरोध में ब्रिटेन के बाजारों में चाय की कमी को दूर करने का उत्तरदायित्व श्री ब्रूस को सौंपा गया था। श्री ब्रूस ने चीन के कुछ कारीगरों को नौकर रखा, और उन्हें साथ लेकर वह उत्तरी असम के चाय के उन जंगलों में पहुंचे, जहां पेड़ों से तोड़ी गई ताजा पत्तियों को उसी स्थान पर मसल कर चाय तैयार की जाती थी। जंगलों में जाकर पेड़ों से कच्ची पत्तियां तोड़ने में इतनी कठिनाई होती थी कि प्रथम पथ-प्रदर्शक प्लांटर —श्री ब्रूस—ने विभिन्न केन्द्रों में चाय-निर्माण-गृह स्थापित किए। इनमें चीन के चाय-कारीगरों की देख-रेख में स्थानीय श्रमिकों द्वारा चाय तैयार की जाने लगी।

चाय-निर्माण-गृह

सुव्यवस्थित चाय-बागबानी आरम्भ हो जाने से, छोटी-छोटी चाय-एस्टेटों के समीप चाय-निर्माण-गृह बनाए गए और इनमें चाय-निर्माण-कार्य में प्रशिक्षित देसी मजदूर काम करने लगे। पुराने ढंग से चाय की पत्तियां सुखाकर रोलिंग कक्ष में लाई जाती थीं। यहां लम्बी मेजों के किनारे 10 से 16 तक मजदूर काम के लिए तैयार खड़े रहते थे। ऐसा लगता है कि तब उपकरण के रूप में केवल लकड़ी और बांस का ही उपयोग किया
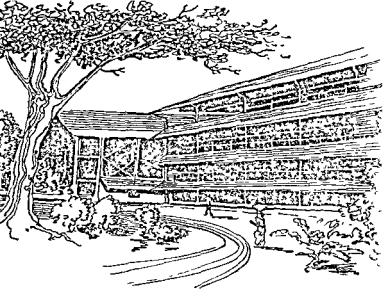
चाय फैक्टरी समीप से

जाता था, और आरम्भिक चाय निर्माण-प्रक्रिया के दौरान कीटाणु चाय पर अपना हानिकर प्रभाव डालते रहते थे। मेज़ पर हाथों से चाय की पत्तियों को तब तक रगड़ा जाता था, जब तक कि उसकी लुगदी-सी नहीं बन जाती थी। सब व्यक्ति बारी-बारी से काम करते जाते थे, और अंत में अंतिम मज़दूर लुगदी के गोले को लगभग आध घंटे के लिए मेज़ पर छोड़ देता था। इस बीच चाय की तुड़ी-मुड़ी पत्तियां एक-दूसरे से चिपक जाती थीं। आधे घंटे की इस अवधि के बाद, साफ़-साफ़ पत्तियों को अलग कर दिया जाता था और कम साफ पत्तियों को फेंक दिया जाता था। साफ पत्तियों को गुण-संयोजन करने के लिए बांस की चटाइयों पर ढाई-तीन घंटे के लिए फैला दिया जाता था। इन पत्तियों को बराबर हिलाते-डुलाते रहते थे।

मजदूरों की थी; और इसीलिए पेड़ गिराने और उन्हें छोटे-छोटे लट्ठों में काटने के लिए अधिकतर आरा मशीनों का ही प्रयोग किया जाता था। किमाण्ड प्लेट रोलर के लिए मार्शल कम्पनी ने 3 हार्स पावर का इंजन भेजा था और उसी इंजन से किमाण्ड प्लेट रोलर पहली बार चलाया गया था; यद्यपि बाद में उसकी शक्ति में काफी मात्रा में वृद्धि की जाती रही।

नमूने तथा पेटण्ट सम्बन्धी रजिस्ट्री

टी कम्पनी के रिकार्ड में इस बात का निश्चित प्रमाण है कि सन् 1873 में श्री विलियम जैक्सन ने मार्शल सन्ज एण्ड कं० लि० के सहयोग से चाय की रोलिंग मशीन बनाने से सम्बन्धित नमूने तथा पेटण्ट की रजिस्ट्री कराई, और वह मशीन आज तक संतोषजनक कार्य कर रही है।

जैक्सन के 'क्रास-ऐक्शन' टी रोलर का पहला नमूना किमाण्ड के सिद्धांतों से प्रभावित था। और, ऐसा पता लगता है कि दोनों में रायल्टी सम्बन्धी समझौता हो जाने पर जैक्सन ने किमाण्ड के नमूने में सुधार किया। जैक्सन के 'क्रास-ऐक्शन' टी रोलर का कोई नमूना आज उपलब्ध नहीं है। फोटो से ही उसकी आकृति का पता चलता है। वह एक भारी-भरकम मशीन थी जिसमें एक क्रैन्क होती थी जो बड़े भाप इंजन के साथ जुड़कर मशीन को चलाती थी। किमाण्ड रोलर में एक सुधार यह भी किया गया कि उसमें चाय की पत्तियां रखने के लिए धानी यानी हापर की व्यवस्था की गई, जो आज के हुड का पहला रूप थी। उसमें यह व्यवस्था भी थी कि धानी को रोलिंग मेज़ की सतह के अनुरूप ऊपर-नीचे किया जा सकता था।

इस संबंध में राय साहब एच० बी० कनोई द्वारा तैयार की गई एक मशीन का वर्णन करना भी आवश्यक है। इस मशीन का फोटो श्री कनोई के गणेशवाड़ी स्थित प्रधान कार्यालय में उपलब्ध है। इसमें लकड़ी के दो बक्से होते थे जो क्रास-ऐक्शन
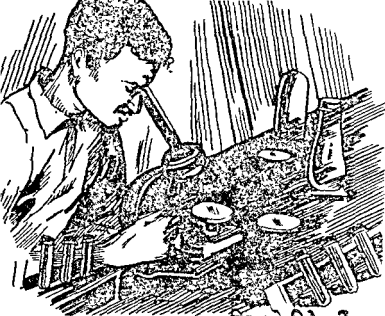
चाय संबंधी खोज और जाच-पड़ताल की प्रयोगशाला

सिद्धांत के अनुसार मजदूरों द्वारा आगे-पीछे धकेले जाते थे। श्री कनोई ने चाय तैयार करने के लिए मशीन तो नहीं बनाई, लेकिन उन्होंने मशीनों में प्रयुक्त चाय निर्माण-प्रक्रिया के सिद्धांत का लाभ अवश्य उठाया।

सन् 1878 तक विलियम और जान जैक्सन ने मार्शल सज एंड कंपनी लिमिटेड के सहयोग से चाय निर्माण-प्रक्रिया का पूर्णतया यंत्रीकृत कर दिया था। क्रास-ऐक्शन रोलर के स्थान पर 'रैपिड' टी रोलर का उपयोग होने लगा था। यह पहली घूमने वाली मशीन थी। ड्रुड लकड़ी के और चौकोर होते थे। मेजें पहले लकड़ी, फिर पत्थर और सीमेंट, और उसके बाद

पातल को चादर के अस्तर के साथ, और अंत में तांबे और रांगे का मिश्र धातु, अर्थात् गन-मैटल, से तैयार की जाने लगी।

विकास तथा सुधार

सन् 1900 तक जैक्सन बन्धुओं ने कई प्रकार के नमूने तैयार किए। रिकार्ड में उनके द्वारा बनाई गई मशीनों के नाम इस प्रकार है: 'रैपिड', 'एक्सेलसियर', 'लिटल जायंट', 'डबल-ऐक्शन', और 'रिजिड रैपिड' आदि। ऐसा लगता है कि उन्होंने अन्य नामों वाली ऐसी मशीनें भी बनाई थीं, जिनके नाम रिकार्ड में मौजूद नहीं हैं। इन मशीनों में जो सिद्धांत अपनाया गया था, वह मूलतः 'रैपिड' नामक मशीन वाला ही था। अन्तर केवल डिज़ाइन और यांत्रिक प्रयोग में था।

चाय मशीनरी के संबंध में सर सैमुअल डेविडसन के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। उनकी मशीन का नाम था— ओ० सी० यो० टी-रोलर। इससे यह पता लगता है कि उन्होंने ही डबल ऐक्शन टी-रोलर के घूमने वाले क्रैन्क की सहायता के लिए 'ओवर हैड क्रैन्क बेयरिंग' का उपयोग पहली बार किया था। चाय रोलिंग मशीनों के लिए चल रही प्रतियोगिता में सर सैमुअल सम्मिलित नहीं हुए थे। वह भारत में अपने पिता की टी-एस्टेट में उनके सहायक बनकर सन् 1864 में कछार आए थे। उन्होंने सन् 1877 में चाय सुखाने वाली मशीन बनाकर चाय मशीनरी के विकास में अपना विशिष्ठ योगदान दिया।

इन मशीनों के नामों से इनके डिज़ाइन की विभिन्नता स्पष्ट होती है। इस विभिन्नता के पीछे उद्देश्य यह रहा है कि मशीनों की कार्य-क्षमता को अधिक से अधिक बढ़ाया जाए। इन मशीनों की पारस्परिक भिन्नता को समझने के लिए इनके बारे में ब्यौरेवार विचार करना अपेक्षित है।

आरम्भ में चाय रोलर मेज़ की तरह चपटे होते थे और वे आगे और पीछे की ओर सरकते थे। फिर इस बात के प्रयत्न

किए जाते रहे कि रोलिंग-प्रक्रिया के दौरान चाय की पत्तियां इधर-उधर या आगे की ओर न बढ़कर केन्द्र की ओर जाए। 'रेपिड' और 'मेटेलिक' मशीनों द्वारा इस दिशा मे पहला प्रयत्न किया गया। इनमें खाली स्थान रखकर उनमें छोटे-छोटे ब्लाक इस तरह फंसा दिए जाते थे कि वे चाय की पत्तियों से रगड़ खाते रहते थे। इसके बाद ये ब्लाक ऐसे कोण से लगाए गए कि चाय की पत्तियां मसले जाने पर केन्द्र की ओर बढ़ती रहें नई पत्तियां उनका स्थान लेती रहे, और प्रक्रिया लगातार चलती रहे। लेकिन केन्द्र के पास इस प्रकार पत्तियां इकट्ठी होने से वे वहीं रुकी रह जाती थी, और रोलिंग प्रक्रिया का सहज प्रवाह रुक जाता था। इसलिए चाय की पत्तियों के आने-जाने को सुगम बनाए रखने के लिए इस दिशा मे प्रयत्न करना अपेक्षित था। अतः हुड को अधिक गहरा किया गया और ब्लाकों की जगह बैटनों यानी तख्तों ने ले ली; ये आरम्भ मे अजीब-सी आकृतियो के थे। बैटनों के प्रयोग मे सम्भवतया उद्देश्य यही रहा होगा कि रोलिंग मशीन की मेज पर अधिक से अधिक स्थान मे रोलिंग प्रक्रिया चल सके; और अधिक पत्तियां की रोलिंग की जा सके। पर यह पद्धति लोकप्रिय नही हो पाई, और लगभग 22.5 सेंटीमीटर के विस्तार को ही मानक माना जाने लगा।

अन्य सम्बद्ध वस्तुएं

गुणवत्ता और मात्रा बढ़ाने की दृष्टि से चाय-निर्माताओं ने दूसरी और तीसरी रोलिंग की मशीनों में उस्तरे के समान तेज चाकू लगाने शुरू कर दिए, ताकि हरी पत्तियों की डंडी तथा अन्य भाग को साफ पत्तियों से अलग किया जा सके। इसी सिलसिले में एक लटकती मूसली हुड के ऊपर इसलिए बांध दी जाती थी कि चाय में गांठें न पड़ने पाएं। लेकिन ये सब प्रयास प्रायः असफल ही रहे। फिर भी इस संबंध मे कोन का प्रयोग काफी सफल रहा। हुड में इसका प्रयोग किए जाने से चाय में गांठें नहीं

तक गर्म की । इसी तरह से एक और एयर जगदीश के 15 मॉर्टियर के पत्र का भाग को बॉलियों में डाल कर दिया गया, और इसे रोलिंग प्रक्रिया में अच्छा सफलता प्राप्त हुआ ।

इस दिशा भाग को शक्तियों से सबसे अधिक मांग उस समय होता था, जब रोलिंग मशीनें चलाई थीं । धीरे-धीरे इस दिशा में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया गया और मशीन-निर्माताओं ने ऐसी मशीनों का निर्माण आरम्भ किया जिनमें काम वेलिंग और रोलर बेलिंग का उपयोग किया गया था । ये मशीनें अच्छा काम सामान्यतः से करती हैं ।

नये आविष्कार

सिडकार्कोर्टन-रोटर मशीन द्वारा प्रतिदिन 1,500 किलोग्राम मुर्झाई पत्तियों की रोलिंग की जा सकती थी, जबकि पहले विश्वयुद्ध के बाद के दिनों में 12 हार्स-पावर की रोलिंग मशीन एक दिन में 450 किलोग्राम चाय की रोलिंग करती थी । चाय रोलिंग मशीन की क्षमता में इतनी वृद्धि होने से मशीनें इस स्थिति में तो आ गईं कि अधिक चाय की रोलिंग कर सकें; लेकिन उनसे चाय की पत्तियों के गुणों में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पाई । ऐसे समय मनिपराट एण्ड कम्पनी लिमिटिड के अधीन कार्य करने वाले एक वैज्ञानिक ने जिसका नाम ब्रिटेनिया इंजीनियरिंग कम्पनी लिमिटिड था, अपने नये आविष्कार 'हाई एफिशियंसी रोलर' के साथ इस क्षेत्र में पदार्पण किया । इस कम्पनी के वैज्ञानिक अधिकारी श्री ब्रेटन के सहयोग से लेज-बेंडन पद्धति निकाली गई । इससे रोलिंग में बेंडन का प्रयोग करने से होने वाली क्षति से बचने का रास्ता निकला । इस रोलिंग मशीन द्वारा पत्तियों की रोलिंग धीरे-धीरे होती थी, और इसका असर यह होता था कि पत्तियों को कम हानि पहुंचती थी, और उसकी गुणवत्ता बनी रहती थी । यही कारण है कि अच्छी गुणवाली चाय तैयार करने के लिए रोलिंग मशीनों को सर्वोत्तम माना जाता है ।

श्रीलंका और जावा आदि देशों में रोलिंग मशीन के विकास से संबंधित गतिविधियों के बारे में कुछ पता नहीं लग पाया है। फिर भी ऐसा समझा जाता है कि वहां की चाय के छोटे पौधों की छोटी-छोटी पत्तियों की रोलिंग को भली प्रकार करने के लिए वहां भी बैंटन में काफी सुधार हुए होंगे। एक विचार यह भी सामने आया था कि रोलिंग के लिए तीन पत्तियों की शक्ल के बैंटन का प्रयोग किया जाए, जिससे कि मशीन की रोलिंग क्षमता बढ़े। इस प्रकार के प्रयत्नों और धारणाओं के सबध में विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सभी प्रयत्नों का एकमात्र उद्देश्य यह था कि रोलिंग मशीनों की कार्य-क्षमता बढ़े और वे अच्छा काम करें।

रोलिंग मशीनों का वर्णन करते समय हमें उन व्यक्तियों को भुला नहीं देना चाहिए जिन्होंने रोलिंग मशीनों के परिचालन को सुगम बनाने के लिए निजी प्रयत्न किए। रोलिंग संबंधी एक समस्या यह भी थी कि रोलिंग के दौरान अलग-अलग समय पर उचित दबाव डालने के लिए कौन-सी पद्धति अपनाई जाए। दीपलिंग टी एस्टेटों के मैनेजर श्री सिडनी सी० ग्राग्राप ने सन् 1927 में 'ग्राग्राप स्वचालित दबाव गियर' बनाया। इसमें ऊपर की ओर उभरे हुए भाग और रोलर को कुछ इस तरह मिलाया गया था कि उससे निर्धारित समय के दौरान हल्के और भारी दबाव को आवश्यकतानुसार कायम रखा जा सकता था। अच्छी रोलिंग करने और उत्तम चाय तैयार करने के लिए इस दबाव के महत्त्व को समझना जरूरी था, और श्री ग्राग्राप ने अपने आविष्कार में इसी बात को महत्त्व दिया था। लेकिन यह मशीन लोकप्रिय नहीं हो सकी, और इसका प्रयोग केवल उसी कम्पनी में ही हो पाया जहां श्री ग्राग्राप नौकरी करते थे। इसके अलावा असम कम्पनी लिमिटिड के श्री जे० आर० क्नेटन ने भी सन् 1930 में एक स्वचालित दबाव सहित रोलिंग मशीन का डिज़ाइन तैयार किया था। पर उसका उपयोग भी पूरी तरह नहीं हो पाया। इस

पद्धति में अधिक दबाव वाले सम्पीडक यानी कम्प्रेसर दाव ढक्कनों के साथ जुड़े हुए हाइड्रालिक सिलिंडरों का परिचालन करते थे। इस तरीके से अधिक दबाव डाला जा सकता था और इस दबाव को नियन्त्रित करने की रीति भी सरल थी। फिर भी अनेक यांत्रिक कठिनाइयों के कारण इस उपकरण में वार-बार खराबी आ जाती थी, जिससे अन्ततः लोगों में इस पद्धति के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गई।

अब तक रोलिंग प्रक्रिया के केवल उसी ढंग का वर्णन किया गया है जो काली और हरी चाय बनाने के सिद्धांतों के अधीन प्रयोग में लाया जाता रहा है। रावर्ट लेग एण्ड कम्पनी द्वारा तम्बाकू के पत्तों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले लेग कटर को चाय की पत्तियों की कटाई के लिए प्रयोग करने की ओर सबसे पहले श्री जी० एस० नेपियर फोर्ड का ध्यान 1932 ई० में गया। चाय की पत्तियों की महीन कटाई करने से कई प्रकार के लाभ थे जैसे कि छोटे-बारीक टुकड़ों के कारण पत्तियों में गुण-संयोजन-प्रक्रिया तेज़ी से होती थी और समय तथा श्रम भी बचता था। यह विधि आज भी प्रयोग में लाई जाती है, किन्तु जितना की आरम्भ में समझा गया था, पत्तियों को उतना महीन काटना संभव नहीं हो सका। इस प्रकार की रोलिंग में पत्तियों को केवल हिलाने की प्रक्रिया होती है, क्योंकि इन मशीनों में पत्तियों में खलबली करने वाले तुस्तों यानी वेंटनों आदि की व्यवस्था नहीं होती। कटाई से पहले पत्तियां प्रायः हुड में हिलती रहती हैं और एक कोन पत्तियों को एक जगह इकट्ठा होने से बचाता रहता है, और इस प्रकार पत्तियों में किसी मात्रा तक आलोड़न चलता रहता है। इस प्रकार की क्रिया के लिए मूलतः दो प्रकार की मेजें प्रयोग में लाई जाती हैं। एक क्रिया-विधि में मेज एक स्थान पर जमी रहती है और हुड हिलती-डुलती रहती है, और दूसरी क्रिया-विधि में हुड एक स्थान पर स्थिर रहती है और मेज़ घूमती है।

सी० टी० सी० मशीन

चाय की पत्तियों की रोलिंग करने के लिए जैक्सन के मूल डिज़ाइन द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का पूरा लाभ उठाते हुए, रोलिंग से पहले और बाद में चाय की पत्तियों के कोशिकाओं को तोड़ने की दिशा में कई प्रयत्न किए गए ! इनमें दो प्रमुख मशीनें थी—श्री निकल की 'ई० जे० मशीन' और श्री मक्कॅचर की 'सी० टी० सी० मशीन'। ये दोनों मशीनें 1930 के आस-पास सामने आईं। पहली श्री निकल के नियंत्रण मे विद्यमान चाय एस्टेटों में उपयोग की जाती थी और दूसरी बनाए जाने के कुछ ही दिनों बाद काम में आनी बंद हो गई। 'ई० जे० मशीन' पूरी तरह चाय की पत्तियों को मसल देती थी, जिससे उनमें से रस रिसने लगता था। इस मशीन का एक रोलर ठोस होता था और दूसरा रोलर खण्डों में बंटा रहता था, इसमें स्टेनलेस स्टील के छल्ले पड़े होते थे, और स्टेनलेस स्टील के पीछे रबड़ की गद्दियां लगी रहती थीं। पत्तियों पर पूरी दाब पड़ते समय इस मशीन की प्रक्रिया की अवधि और सम्पर्क-स्थल का विस्तार इतना कम होता था कि पत्तियों पर पड़ने वाला प्रभाव अनियंत्रित रहता था। आज इस मशीन का प्रयोग किसी विरली ही एस्टेट में किया जाता होगा।

1931 ई० के आसपास सी० टी० सी० मशीन का प्रयोग आरम्भ हुआ, और लगभग एक वर्ष अर्थात् 1932 में बंद भी हो गया। इस प्रकार की मशीनों द्वार तैयार की गई चाय लंदन के बाजारों में पसंद नहीं की गई। लंदन के बाजार का प्रभाव चाय पर आज भी विद्यमान है, और उन दिनों तो चाय का अस्तित्व लंदन के बाजारों पर ही निर्भर करता था।

सन् 1945 के आसपास सी० टी० सी० मशीनों का प्रचलन पुनः बढ़ जाने के बाद से इन मशीनों के विषय में इतना कुछ लिखा जा चुका है कि यहां उसके विवरण का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। फिर भी इतना बताना अनुचित नहीं होगा

कि सी० टी० सी० मशीन के पहले के सभी आविष्कारों के नमूनें के आधार पर नई सी० टी० सी० मशीन का निर्माण हुआ है। नई सी० टी० सी० मशीन में मूलभूत सिद्धांत के समान होते हुए भी, आज इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है कि अलग-अलग दबाव के साथ पत्तियों को मसलने में चाय निर्माण-प्रक्रिया को नियंत्रित रखा जा सके, और आवश्यकतानुसार दांतेदार छड़ों के दबाव को घटाया-बढ़ाया जा सके।

सी० टी० सी० मशीनें रोलिंग मशीनों से भिन्न होती हैं। लेकिन फैक्टरियों में रोलिंग मशीनों के स्थान पर सी० टी० सी० मशीनें होने पर भी उन स्थानों को रोलिंग-कक्ष ही कहा जाता है। आजकल फैक्टरियों में रोलिंग मेजों के स्थान पर आधुनिक मशीन मक्टीयर-रोटोरवेन प्रयोग में लाई जाने लगी है। श्री आई० मक्टीयर या टोकलई प्रायोगिक केन्द्र के वर्षों के प्रयत्नों से एक ऐसी मशीन बनाई गई है जो पत्तियों की महीन कटाई करने, रस निकालने, पत्तियों का कोशिकाओ को तोड़ने, और पत्तियों का मलीदा-सा बनाने का काम करती है। इस मलीदे को बाद में सुखा लिया जाता है और पत्तियों को छांट लिया जाता है।

रोटोरवेन मशीनों ने चाय निर्माण-प्रक्रिया को निस्संदेह सरल बना देने के साथ, श्रम को मात्रा में भी पर्याप्त कमी कर दी है। एक सुनियोजित फैक्टरी जिसमे रोटोरवेन और सी० टी० सी० मशीनें हैं, काफी सीमा तक मजदूरों में कमी कर सकती है, और, वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए, निर्माण लागत को भी घटा सकती है। मशीनों का उपयोग बढ़ जाने से चाय बनाने के साथ जुड़ी हुई रोमांस की भावना को ठेस अवश्य पहुंचती है, लेकिन आज की परिस्थितियों में भावुकता से काम नहीं चलता।

सम्बद्ध उपकरण

रोलिंग मशीनरी के सम्बन्ध में लिखते समय रोलिंग प्रक्रिया

से सम्बद्ध अन्य सहायक उपकरणों का वर्णन करना अनुचित नहीं होगा। चाय की पत्तियों में से महीन और उत्तम भाग को अलग करने के लिए घूमती हुई छलनियां प्रयोग में लाई जाती हैं, और इस प्रकार की छलनियों को इस कार्य के लिए अच्छा माना जाता है। चाय की पत्तियों में रोलिंग और कटाई के समय गांठें न पड़ने पाएं, इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न किए गए हैं। कभी स्टेनलेस स्टील की ट्रे प्रयोग में लाई गई है, तो कभी अलग की जा सकने वाली ट्रे इस्तेमाल की गई है। लेकिन घूमने वाली छलनी ही सबसे अधिक सफल सिद्ध हुई है। पत्तियों के अच्छे और खराब हिस्सों को अलग करने के लिए छलनियां उपयोग में लाई जाती हैं। साथ ही यह कोशिश भी की जाती है कि पौधों से पत्तियां तोड़ने के ढंग में भी सुधार किया जाए। पत्तियां तोड़ने की विद्या का भी धीरे-धीरे पर्याप्त विकास हुआ है।

ऊष्मा उत्पादन

रोलिंग के समय पत्तियों पर दबाव पड़ने और आपस में रगड़ खाने से गरमी उत्पन्न होती है। चाय की पत्तियों में रासायनिक ऊष्मा भी उत्पन्न होती है और रोलिंग में पत्तियों के आसपास ताप बढ़ जाता है, जिससे पत्तियों के गुण नष्ट होने की संभावना रहती है। रोलिंग मशीन में इस ऊष्मा उत्पादन का निरोध करने की संभावना कम होने के कारण, रोलिंग मशीन के चारों ओर के ताप को नियंत्रित करने का प्रयत्न किया जाता है, आर्द्रतापूर्ण वायु के झोंकों की व्यवस्था की जाती है, रोलिंग कक्षों में वायु-संचालन की उत्तम व्यवस्था की जाती है, अथवा रोलिंग मशीनों की गति को आवश्यकतानुसार कम-अधिक किया जाता है।

कुछ संकट

जहां मशीनें होती हैं, वहां इस बात का डर सदैव बना रहता है कि मशीन चलाने में तनिक भी असावधानी होने से दुर्घटना हो सकती है। इसलिए परिचालकों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। कुछ वर्ष पहले कछार की एक चाय फैक्टरी में जब एक मिस्त्री रोलिंग मशीन की सफाई कर रहा था और उसका एक हाथ हुड के अन्दर था तो किसीने गलती से मशीन चला दी। इससे उस मिस्त्री के हाथ की हड्डियां चूर-चूर हो गईं।

नई रोलिंग मशीनें

चाय की पत्तियों का उत्पादन बढ़ाने की ओर आज विशेष ध्यान दिया जाता है। उत्तम ढंग से चाय के पौधे लगाए जाते हैं, बढ़िया रासायनिक खाद डाली जाती है, और वैज्ञानिक ढंग से पौधों की छंटाई की जाती है। परिणामतः चाय की फसलें उत्तम होती हैं। सधे हुए हाथ सफाई से पत्तियां तोड़ते हैं। इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि पत्तियां अधिकाधिक मात्रा में चाय फैक्टरियों में जाएं। इन पत्तियों की मात्रा बढ़ने से मशीनों के आकार में भी वृद्धि होना अनिवार्य है। रोलिंग मेजें जो 75 वर्षों तक आकार में 90 सेंटीमीटर रहीं, आज उन मेजों के हुड का आकार ही 115 सेंटीमीटर है।

रोलिंग मशीनों के आकार में वृद्धि और उनमें कई प्रकार के सुधार हो जाने के बावजूद अब भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि चाय की पत्तियों की रोलिंग के लिए यह एक आदर्श उपकरण है। मक्केवर की सी० टी० सी० मशीन ने निस्संदेह चाय निर्माण-प्रक्रिया में काफी सुधार किया है।

यह एक स्वतः सिद्ध बात है कि किसी भी मशीन का अस्तित्व तभी तक कायम रह सकता है, जब तक कि उस मशीन की कार्य-प्रणाली को समझने वाले व्यक्ति पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होते

हैं। आरम्भ से ही चाय-उत्पादन क्षेत्र में रोलिंग मशीनों को चाय उत्पादकों द्वारा पसंद किया जाता रहा है। कई प्रकार की मशीनें, जैसे रोटोरवेन, लेग कटर, आदि बनीं; लेकिन रोलिंग मशीनों का ही प्रयोग अधिकतर किया जाता है। आजकल रोलिंग मशीनों के अलावा चाय उत्पादक काफी संख्या में सी० टी० सी० यानी क्रशिंग, टियरिंग और कलिंग मशीनों को भी उपयोग में लाने लगे हैं।

पत्तियां सुखाने वाली मशीनें

चाय उत्पादकों की रुचि आज इस ओर विशेष रूप से है कि चाय की पत्तियों को भली प्रकार सुखाने के लिए भाप का उपयोग किया जाए। सन् 1908 में डा० वोस्चा ने, जो जावा की माला-वार एस्टेट में काम करते थे, एक ऐसा घूमने वाला ड्रम बनाया था, जिसके बीच में एक पाइप लगी रहती थी। इसमें होकर भाप ड्रम में रखी पत्तियों में से गुजरती रहती थी। यह तरीका पत्तियों को एक हद तक सुखाने में सफलता प्राप्त कर सका, लेकिन पूर्ण सफल नहीं हुआ। इस आरम्भिक प्रयत्न के आधार पर ही 'सिराको' नामक चाय सुखाने वाला ड्रम बनाया गया था, जो प्रचलित नहीं हो पाया। फैक्टरियों में इस तरह के ड्रम रखे तो जाते थे, किन्तु विशेष और अत्यावश्यक परिस्थितियों में ही उनका उपयोग किया जाता था।

सन् 1927 में मार्शल्ज ने चाय सुखाने वाला एक बड़ा उप-करण बनाया, जिसमें एक घूमने वाली ट्रे लगी हुई थी। इस उपकरण में दोष यह रह गया था कि ताप बढ़ जाने पर पत्तियां लाल पड़ जाती थीं, और इस प्रकार अनुपयोगी हो जाती थी। उन्हीं दिनों लोगों का ध्यान इस ओर गया कि यदि सुरंगें बना कर उनमें ट्रालियों में चाय की पत्तियों को बारीक तह फैला दी जाए और वहां उनकी नमी सुखाने के लिए गर्म हवा की व्यवस्था की जाए, तो पत्तियां जल्दी और अच्छी सूख सकेंगी। परन्तु इस

प्रकार की सुरंगों के ताप को नियंत्रण में रखना संभव नहीं था, इसलिए यह तरीका भी उस समय अधिक सफल सिद्ध नहीं हुआ।

चाय की पत्तियों को कुम्हलाने के लिए चाय फैक्टरियों में बड़ी-बड़ी नांदों की व्यवस्था की जाने लगी। उनमें चाय की पत्तियों को भर देने के बाद उन्हें खुला रखा जाता था। नांद में पड़ी हुई पत्तियां धीरे-धीरे कुम्हलाने लगती थी। तदुपरांत पत्तियों को सुखाने और निर्माण-प्रक्रिया के लिए तैयार करने के लिए ही गरमी की आवश्यकता होती थी। पत्तियों को इस प्रकार कुम्हलाने से उनमें प्राकृतिक ढंग से कुम्हलाई पत्तियों जैसा प्रभाव आ जाता था। किन्तु पत्तियों को रोलिंग के लिए तैयार करते समय उन्हें एक सीमा तक सुखाना आवश्यक होता है। ये पत्तियां उस सीमा तक सूख नहीं पाती थी। अतः पत्तियों को सुखाने के लिए कोई और तरीका निकालना जरूरी था।

तदुपरांत पत्तियां सुखाने के लिए रैक प्रयोग में लाए जाने लगे। विशेष ढंग से तैयार किए गए रैकों पर चाय की कुम्हलाई पत्तियां पतली परत के रूप में फैला दी जाती थी और ये रैक एक-दूसरे के ऊपर रख दिए जाते थे। फिर पत्तियों को बारह से अठारह घंटों तक इन रैकों पर रखा रहने दिया जाता था। यदि वातावरण आर्द्रतापूर्ण होता था तो इन रैकों के चारों ओर गरम हवा की व्यवस्था कर दी जाती थी। इस प्रकार पत्तियां धीरे-धीरे उस सीमा तक सूख जाती थीं, जिसके बाद उन्हें रोलिंग के लिए उपयुक्त माना जाता था। आज भी चाय बनाने वाली अनेक फैक्टरियों में यही इस प्रयोग में लाया जाता है।

आर्द्रकर उपकरण

चाय की पत्तियों को कृत्रिम ढंग से आर्द्रता उपलब्ध कराने के लिए निर्माताओं ने 'बटेरम' आर्द्रकर उपकरण बनाया, जो फेंटन-कक्ष या रोलिंग-कक्ष में छत से लटका दिया जाता था। बड़ा से बड़े कक्ष में धुंध की व्यवस्था करने के साथ-साथ अतिरिक्त

बारम्बारता तक हवा उपलब्ध करने की प्रक्रिया का भी नियंत्रण करता था। समय की गति के साथ निर्माता इस आर्द्र कर उपकरण की क्षमता बढ़ाते रहे, जिससे उपकरण का आकार भी बढ़ता गया।

पिछले कुछ वर्षों से छोटे आकार के आर्द्र कर उपकरण बनाए जाने लगे हैं। इन्हें उठाकर ऐसे स्थानों पर रखा जा सकता है जहां से वे अधिक प्रभावकारी सिद्ध हो सकते हैं। आजकल चाय-निर्माण फैक्टरियों में छोटे आकार के आर्द्र कर उपकरण ही प्रयोग में लाए जाते हैं।

चाय की पत्तियों को सुखाने की मशीनें

चाय की पत्तियों को सुखाने के लिए मशीन के आविष्कार में काफी समय लगा। चाय का प्रचार बढ़ा। चाय की मांग बढ़ी। चाय की उपज बढ़ी। और चाय की पत्तियों की अधिकता के कारण पुराने ढग के उष्ण-कक्षों से काम चलना कठिन हो गया। ये उष्ण-कक्ष चाय की पत्तियों की नमी सुखाने में सहायक थे, और इस कार्य के लिए श्रमिकों की बड़ी संख्या में आवश्यकता नहीं होती थी; इसीलिए यह पद्धति काम में लाई जाती रही।

जैसे-जैसे चाय के क्षेत्र में मशीनों का महत्त्व बढ़ता गया, चाय की पत्तियों को सुखाने के लिए भी मशीनों का प्रयोग करने की ओर आविष्कारकों का ध्यान गया। चाय के इतिहास में सन् 1861 से पहले चाय सुखाने वाले उपकरण का वर्णन नहीं मिलता। इस पद्धति के अनुसार बास की छलनियों में चाय की पत्तियां जमा दी जाती थीं। और इन पत्तियों को ऐसी आंच पर रखा जाता था जिसमें धुआं नहीं होता था। यह प्रक्रिया 15 मिनट तक चलती थी जिसके दौरान पत्तियों की नमी सूख जाती थी। लगभग बीस वर्ष यही पद्धति प्रयोग में लाई जाती रही।

सन् 1880 से पहले भी कई आविष्कारक कोई ऐसा उपकरण बनाने के लिए प्रयत्नशील थे जिससे अपेक्षित सीमा तक चाय की

पत्तियों की नमी को सुखाना अधिक सुव्यवस्थित ढंग से किया जा सके। मार्शल एण्ड संज़ के संरक्षण में श्री ए० राबर्टसन ने भाप के द्वारा पत्तियों को सुखाने के लिए एक उपकरण तैयार किया। असम में जंगलाती लकड़ी की कोई कमी न थी। ब्वायलरों के द्वारा भाप बनाने में यह जंगलाती लकड़ी काफी सहायक थी। मार्शल एण्ड संज़ ने 3 हार्स पावर के भाप इंजनों और छोटे-छोटे ब्वायलरों का प्रयोग आरम्भ किया। पाइपों, हाट प्लेटों, रेडिएटरों आदि की सहायता से भाप का उपयोग कर चाय की पत्तियां सुखाई जाने लगीं। श्री राबर्टसन की यह पद्धति अधिक प्रचलित नहीं हुई।

सिराको मशीन

कई असफल प्रयत्नों के बाद सैम्युअल डेविडसन ने 'सिराको' मशीन का आविष्कार किया। चाय की पत्तियों को सुखाने वाली यह मशीन चाय उत्पादकों ने काफी पसंद की। शनैः शनैः इसमें कई सुधार भी हुए। इस मशीन में मैटल ट्रे का प्रयोग होता था। मैटल लॉकर में ऐसी कई ट्रे होती थीं जिन पर चाय की पत्तियां फैला दी जाती थीं। लॉकर में पंखे द्वारा हवा छोड़ी जाती थी। इस सम्बन्ध में सावधानीपूर्वक इस बात का ध्यान रखा जाता था कि पत्तियां अपेक्षित सीमा से अधिक सूखने न पाएं। इसलिए प्रक्रिया के दौरान जब तब जांच करने के लिए लॉकर से ट्रे निकालने और पुनः लॉकर में रखने की व्यवस्था थी। यद्यपि यह एक आदर्श मशीन नहीं थी, फिर भी इसमें एक बार में काफी मात्रा में पत्तियां सुखाई जा सकती थी।

इन दिनों एक अमरीकी श्री बी० एम० हालिस्वर्थ ने सन् 1885 में चाय सुखाने वाली मशीन बनाने का प्रयत्न किया। लेकिन उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

सन् 18:4 तक सिराको मशीन में कई सुधार हुए। श्री जैक्सन ने मार्शल एण्ड संज़ के लिए 'पैरागान' मशीन बनाई।

यह मशीन भी कई फैक्ट्रियों में पसंद की गई। श्री जैक्सन ने ही 'विक्टोरिया' नामक मशीन बनाई जो किसी हद तक स्वचालित थी।

नवीनतम आविष्कार

उन्नीसवी शताब्दी के अंत तक जो मशीनें बनी उनमें सही अर्थों में स्वचालित पुर्ज़ों को उपयोग मे नहीं लाया जाता था। चाय की पत्तियों को लॉकर में रखने और निकालने से सम्बन्धित सब काम स्वचालित फीडरों के बजाए श्रमिको द्वारा हाथों से ही किया जाता था।

बीसवी शताब्दी के आरम्भिक वर्षों मे पत्तियो को सुखाने के लिए स्वचालित मशीनों का प्रयोग करने की दिशा में काफी तेज़ी से काम आरम्भ हुआ। प्रथम महायुद्ध के बाद से मजदूरी की दरों में निरंतर वृद्धि होती रही है। इस कारण से उत्पादन-मूल्य में वृद्धि का होना अनिवार्य है। महंगी चाय की खपत कठिन है। इन सब कठिनाइयों का मुकाबला करने के लिए मशीनों की आवश्यकता होती है।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सर्वश्री मार्शल एण्ड संज़ ने 'एम्पायर' नाम की चाय की पत्तिया सुखाने वाली मशीन तैयार की। अपने समय के अनुसार यह एक नवीनतम मशीन थी। इस मशीन और इसकी पूर्ववर्ती मशीन 'पैरागान' या 'विक्टोरिया' में मुख्य भेद यही था कि इस मशीन मे स्टोव भूमिगत होने के बजाए भूमि के ऊपर रहता था। इससे फैक्टरी में काम करनेवाले श्रमिको को काफी लाभ हुआ, क्योंकि स्टोव भूमि से ऊपर होने के कारण उस पर काम करना पहले की तुलना मे अधिक सुविधा-पूर्ण हो गया।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद कई फैक्टरियों मे चाय सुखाने के यंत्रों मे तैल का उपयोग किया जाने लगा। यद्यपि तैल से गरमी तैयार करने में काफी व्यय होता है, पर इससे ताप को नियंत्रण

लाख से भी अधिक व्यक्ति पलते हैं। इसीलिए भारत की तीसरी और चौथी पंचवर्षीय योजनाओं में चाय की ओर विशेषरूप से ध्यान दिया गया है।

तीसरी और चौथी पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य

योजना आयोग के आग्रह पर भारत सरकार द्वारा चौथी और पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं में चाय के उत्पादन और निर्यात सम्बन्धी लक्ष्य निर्धारित करने के लिए एक कार्यकारी दल नियुक्त किया गया। इस कार्यकारी दल ने चौथी और पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य निर्धारित करने के साथ-साथ तीसरी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों में भी संशोधन किया। इसलिए कि तब तक की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखते मूल लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन था। इस कार्यकारी दल ने चौथी पंचवर्षीय योजना से सम्बन्धित चाय के उत्पादन और निर्यात के प्रस्तावित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपाय तथा ढंग भी सुझाए हैं।

चौथी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य

वर्ष	उत्पादन किलोग्राम (लाखों में)	निर्यात किलोग्राम (लाखों में)
1969-70	4050	2100
1970-71	4190	2200
1971-72	4320	2300
1972-73	4460	2400
1973-74	4600	2500

तीसरी पंचवर्षीय योजना की वास्तविक स्थिति

वर्ष	[illegible]दन किलोग्राम (लाखों में)
[illegible]61-62	3544

1962-63	3467
1963-64	3464
1964-65	3725
1965-66	3649
पांच वर्षों का वार्षिक औसत	3570

निर्यात

वित्तीय वर्ष	किलोग्राम (लाखों में)	विदेशी मुद्रा आय (रुपये करोड़ों में)
1961-62	2053	122.2
1962-63	2208	129.6
1963-64	2093	123 2
1964-65	2122	124 7
1965-66	1974	114.8
पांच वर्षों का वार्षिक औसत		123.0

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि भारत में तीसरी पंचवर्षीय योजना के 4100 लाख कि० ग्रा० के उत्पादन लक्ष्य को घटाकर 3800 लाख कि० ग्रा० करना पड़ा। इतना ही नहीं, यह घटाया हुआ लक्ष्य भी समय पर पूर्ण नहीं हो सका। यद्यपि यह उत्पादन लक्ष्य वास्तविक उपलब्ध आकड़ों पर ही आधारित था, अनुभव बताता है कि इन लक्ष्यों को हम सदैव प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाते। मूल रूप से, आशा और अधिकतम लक्ष्य प्राप्त करने की मनुष्य की जन्मजात अभिलाषा अक्सर उत्पादन सम्बन्धी लक्ष्यों के अनुमान को प्रभावित करती है। चाय एक कृषिजन्य उपयोगी वस्तु है। इसका उत्पादन मुख्यतया मौसम पर निर्भर करता है। अधिक उत्पादन करने के बारे में हमारे कितने ही आदर्श निश्चय क्यों न हों, वर्षा की कमी का, जिसे हम भारत में पिछले दो वर्षों से अनुभव करते रहे हैं, अनुमानित उत्पादन

पर काफी प्रभाव पड़ता है। दूसरा मुख्य कारण सहज रूप से प्राप्य ऐसी पूंजी की कमी है, जो पैदावार बढ़ाने के लिए चुकाने की आसान शर्तों पर कर्ज दी जा सके। जहां तक भारत में चाय की पैदावार को बढ़ाने अथवा चाय के पुनः रोपण का सम्बन्ध है, यह कारण भी काफी महत्त्वपूर्ण रहा है। अन्य चाय उत्पादक देशों की इस सम्बन्ध में जो यथार्थ स्थिति है, उसके बारे में हमें स्पष्ट ज्ञान नहीं है लेकिन अधिकतर चाय उत्पादक देश अभी अल्प-विकसित हैं। अतः यह समझा जा सकता है कि इन देशों की भी स्थिति अनिवार्यतः भारत की स्थिति से भिन्न नहीं होगी। इसके अलावा, विश्व के अधिकतर भागों में खाद्य पदार्थों की कमी भी नकद पैसा लगाकर देश को विकसित करने में बाधक हो रही है। हम अनुभव करते हैं कि कीटनाशियों, कवकनाशियों उर्वरकों और सिंचाई के उपयोग में सुधार करके उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। लेकिन उत्पादक देश सम्भवतः यह भी जानते हैं कि इस प्रकार के साधनों को बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाना कितना महंगा है। कदाचित इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर ही तीसरी पंचवर्षीय योजना के अनुमानित लक्ष्यों को कम करना पड़ा था। वास्तविक स्थिति जानने की ओर सरकार का ध्यान गया है। आज सरकार चाय उद्योग को काफी महत्त्व देती है, क्योंकि इस उद्योग से देश को काफी विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

इस उद्योग की प्रगति की सम्भावनाओं पर विचार करने के लिए भारत सरकार ने 21 जुलाई, 1964 को एक समिति निम्नलिखित कुछ विषयों पर विचार करने के लिए नियुक्त की।

(1) उत्पादन और निर्यात की वृद्धि सम्बन्धी आवश्यकताओं को [illegible] रूप से ध्यान देते हुए चाय उद्योग की वित्तीय [illegible];

[illegible] और बैंकों की ओर से उद्योग के लिए उपलब्ध [illegible] पुनर्विचार, और तत्सम्बन्धी कार्य-प्रणालियों

के सरलीकरण के उपाय;

(3) उद्योग के लिए अपेक्षित वित्तीय व्यवस्था सम्बन्धी सिफारिशें;

(4) चाय-सम्बन्धी करों के ढांचे की जांच और, जहां आवश्यक हो वहां, उद्योग को करों से राहत देने के लिए उपयुक्त उपायों का सुझाव; और

(5) चाय उद्योग के विकास के लिए कोई ऐसा अन्य सुझाव, जिसे यह समिति प्रस्तुत करना उचित समझे।

इस चाय वित्त समिति में वित्त मंत्रालय के अधिकारी, संसद् सदस्य, राज्य सरकारों के वित्त और वाणिज्य विभागों के प्रतिनिधि, बैंकों के प्रतिनिधि, और योजना आयोग के प्रतिनिधि आदि सम्मिलित थे। इसके 25 सदस्यों में चाय उत्पादन और चाय व्यापार क्षेत्रों के भी पांच प्रतिनिधि सम्मिलित थे। समिति से शीघ्र ही रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए आग्रह किया गया।

समिति ने 14 दिसम्बर, 1964 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति अध्यक्ष का आग्रह था कि रिपोर्ट के सम्बन्ध में सभी सदस्य एकमत हों। चाय उद्योग के विकास के लिए समिति की कुछ महत्त्वपूर्ण सिफारिशें निम्नलिखित थीं—

(1) संयुक्त आय के कृषि सम्बन्धी भाग पर कर की दर गैर-कृषि भाग की दर से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(2) निर्यात के सम्बन्ध से क्षेत्र 1 पर लागू उत्पादन कर की दर, जो इस समय 18 पैसे प्रति किलोग्राम है, वापस ली जाए।

(3) चाय प्रवेश सम्बन्धी पश्चिमी बंगाल के कर को समाप्त किया जाए, ताकि उद्योग को प्रोत्साहन मिल सके। इस प्रकार राज्य सरकार के राजस्व की जो हानि होगी, उसकी पूर्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाए।

(4) औद्योगिक निवास योजना के समान चाय उद्योग के श्रमिकों के लिए भी मकान आदि बनाने के लिए 25 प्रतिशत

सहायता दी जाए।

(5) चाय बागानों के लिए उपयुक्त भूमि को आगामी कुछ वर्षों तक राज्य सरकारें अभिगृहीत न करें। यदि ऐसा करना सार्वजनिक हित की दृष्टि से अपेक्षित भी हो तो केवल अत्यधिक महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं के लिए ही ऐसा किया जाए। चाय-क्षेत्र के विस्तार के लिए अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने के लिए चाय-बागानों के प्रतिवेदनों पर राज्य सरकारों को सहानुभूति-पूर्वक विचार करना चाहिए।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिफारिश निम्न प्रकार थी—

(6) चाय वित्त निगम की स्थापना की जाए, जो चाय उद्योग के विकास के लिए माध्यमिक और दीर्घकालिक वित्त की आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था करने के साथ-साथ, व्यापारिक बैंकों की ओर से चाय-कम्पनियों को चाय की उपज बढ़ाने के लिए दी गई अल्पकालिक पेशगियों के लिए गारंटी दे। इन चाय-कम्पनियों के स्वत्व-प्रालेख माध्यमिक और दीर्घकालिक ऋणों की जमानत के रूप में निगम के नाम में होंगे।

भारत सरकार ने इस सिफारिश के आधार पर चाय वित्त और गारंटी निगम स्थापित करने का निर्णय किया। यद्यपि पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं में चाय की ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जा सका था, परन्तु अब चाय बोर्ड के माध्यम से भारत सरकार इस बात के लिए पूर्णरूप से प्रयत्नशील है कि चाय उद्योग को हर प्रकार की सहायता तथा संरक्षण प्राप्त हो सके।

चाय उद्योग के प्रणेताओं और चाय बोर्ड के समन्वित प्रयत्नों से चाय उद्योग में प्रगति हुई है। आज भारतीय चाय के समक्ष निम्नलिखित समस्याएं विद्यमान हैं—

चाय-उत्पादन में वृद्धि
गुणवत्ता में सुधार
निर्यात बढ़ाने के लिए देसी बाज़ार सम्बन्धी पाबंदियां।

(घ) चाय का विदेशों में प्रचार।

चाय-सम्बन्धी कई अन्य गम्भीर समस्याएं भी उद्योग के सामने हैं। इनमें एक है विदेशों में चाय की कीमतों में गिरावट। इसके कई कारण बताए जाते हैं; जैसे चाय के उत्पादन में वृद्धि, चाय-व्यापार सम्बन्धी रीतियां, विशेष रूप से नीलामी की प्रथा और उसकी शर्तें; तथा चाय के सभरण में असंतुलन आदि। इस सम्बन्ध में यह उद्योग सजग है और चाय बोर्ड द्वारा सावधानीपूर्वक जांच करके ऐसे आवश्यक पग उठाए जा रहे हैं जिससे विदेशों में चाय की कीमतों में गिरावट न आने पाए। कीमतों की गिरावट से चाय की क्वालिटी पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

चाय के उत्पादन में वृद्धि

चाय के उत्पादन को विकसित करने के लिए चाय बोर्ड के माध्यम से सरकार चाय बागानों को हर प्रकार की आर्थिक, तकनीकी सहायता देने की व्यवस्था करती है। इसके अच्छे परिणाम लक्षित हो रहे हैं। आज भारत में चाय-उत्पादक अन्य देशों की तुलना में सबसे अधिक चाय होती है।

चाय की गुणवत्ता

चाय की गुणवत्ता में सुधार करने का जहां तक प्रश्न है, भारत में उत्तम चाय तैयार करने के नये-नये ढंग खोजे जा रहे हैं। कुछ भारतीय पद्धतियों का अनुसरण अन्य देशों द्वारा भी किया गया है।

चाय का विदेशों में प्रचार

सन् 1949 में केन्द्रीय सरकार द्वारा विदेशों में चाय के प्रचार का कार्य संभाल लेने से पहले, यह काम चाय उद्योग से सम्बन्धित चाय शुल्क समिति और चाय बाज़ार विस्तार मंडल द्वारा किया जाता था। सरकार ने केन्द्रीय चाय बोर्ड बनाया, जो

बाद में चाय बोर्ड कहलाने लगा। चाय उद्योग से प्राप्त शुल्क का पर्याप्त भाग चाय बोर्ड द्वारा देश-विदेश में चाय-उद्योग के हित में व्यय किया जा रहा है।

चाय बोर्ड चाय के शोधन, कृषि-विस्तार, महामारी-निरोध, खाद, उर्वरक, आदि विषयों की ओर विशेष ध्यान देने के साथ-साथ, इस बात का पूरा ध्यान रखता है कि विदेशों में भारतीय चाय के बाजार में विस्तार हो। इस उद्देश्य से संसार के सभी प्रमुख नगरों में चाय बोर्ड के प्रतिनिधि कार्यालय मौजूद हैं, जो भारतीय चाय के हितों की देखभाल करते हैं।

चाय-निर्यात

1965 और 1966 में भारत की तुलना में श्रीलंका ने चाय का अधिक निर्यात किया। भारत प्रायः मध्यम और उत्तम चाय का निर्यात करता है। भारत द्वारा इस प्रकार की अधिकतर चाय का निर्यात कर दिया जाता है। इसलिए जब तक इन श्रेणियों की चाय का उत्पादन नहीं बढ़ेगा, निर्यात भी नहीं बढ़ पाएगा। अन्य देशों में मध्यम चाय से घटिया किस्म की चाय का उत्पादन अधिक होता है। इस प्रकार की चाय को श्रीलंका किसी भी मूल्य पर निर्यात करने के लिए तत्पर रहता है। भारत की चाय का मूल्य श्रीलंका की चाय के मूल्य की तुलना में अधिक रहता है। उत्पादन की अधिक लागत, महंगी श्रम-शक्ति आदि इसके कारण हैं।

भारतीय चाय का निर्यात बढ़ाने के लिए चाय उद्योग के [illegible] को मध्यम और उत्तम प्रकार की चाय के निर्माण पर [illegible] ओर देना चाहिए। सारे संसार में इस प्रकार की [illegible] की माँग सर्वाधिक है। सी० टी० सी० प्रकार की [illegible] इंग्लैंड, अमेरिका और कनाडा में यथेष्ट मात्रा में [illegible] पद्धति के अनुसार निर्मित चाय कम, चूर्ण,

आयरलैण्ड, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में पसंद की जाती है। संयुक्त अरब गणराज्य में चूरा चाय पसन्द की जाती है। यह स्पष्ट है कि विदेशों में भारतीय चाय की मांग है। इस मांग को पूरा करने के लिए, जहां एक ओर अधिक उत्पादन की आवश्यकता है; वहां दूसरी ओर इन बाजारों के विस्तार के लिए विदेशों में भारतीय चाय का प्रचार करते रहना भी आवश्यक है।

भारतीय चाय के निर्यात के सम्बन्ध में कुछ आंकड़े निम्न प्रकार हैं—

	(हजार किलोग्राम में)		(मात्रा हजार किलोग्राम मे)	
	वर्ष 1966-67	वर्ष 1965-66	वर्ष 1967-68	1968-69
इंगलैंड	86,136	85,227	116,142	102,030
रूस	8,818	12,545	20,079	22,367
संयुक्त अरब गणराज्य	7,727	8,818	16,370	8,946
अमेरिका	4,818	4,182	8,213	8,618
पूर्वी यूरोप	4,364	2,864	4,232	3,506
सूडान	4,318	2,727	7,898	10,524
आस्ट्रेलिया	3,273	2,045	5,714	6,630
कनाडा	2,045	2,091	3,879	4,059
ईरान	1,864	2,545	2,003	2,514
इराक	1,682	1,682	2,173	6,773
ट्यूनिसिया	1,273	1,545	4,012	997
प० जर्मनी	864	1,363	2,132	3,936

उपर्युक्त दो वर्षों के दौरान भारत की तुलना में श्रीलंका ने अधिक चाय का निर्यात किया था। भारतीय चाय की सर्वाधिक खपत इंगलैंड में होती है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से चाय बोर्ड इस बात के लिए प्रयत्नशील रहा है कि श्रीलंका और पूर्वी

अफ्रीका से इंगलैंड के बाजार को निर्यात की जाने वाली चाय की गुणवत्ता की तुलना में भारतीय चाय उद्योग की श्रेष्ठता विचलित नहीं होने पाए। श्रीलंका और पूर्वी अफ्रीका में चाय का उत्पादन बढ़ जाने के कारण पिछले कई वर्षों में इन देशों द्वारा निर्यात की जाने वाली चाय की मात्रा लगातार बढ़ती रही है। यह निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट है :

	कुल निर्यात	भारत	श्रीलंका	पूर्वी अफ्रीका तथा अन्य देश
औसत	(हजार टनो मे)	प्रतिशतता	प्रतिशतता	प्रतिशतता
1951-54	226-338	66	23	11
1955-58	248-939	57	25	18
1959-62	244-535	50	29	21
1963-66	246-364	48	31	21

आज भारतीय चाय-उद्योग इस बात के प्रति पूर्णतया सजग है कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में चल रही प्रतियोगिता में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक पग उठाने में किसी प्रकार से विलम्ब न हो। आज भारतीय चाय की श्रेष्ठता कायम रखने, मूल्यों को प्रतिस्पर्धा के उपयुक्त बनाने, और विदेशों में चाय बाजार का विस्तार करने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

चाय बोर्ड की ओर से चाय की उत्पादन-लागत को नियंत्रण में रखने, चाय-बागानों को सस्ती श्रम-शक्ति उपलब्ध कराने, भारत सरकार की कर-नीति को चाय-उद्योग के विकास की दृष्टि से युक्तिसंगत बनाए रखने की ओर भी इसलिए विशेष ध्यान दिया जा रहा है कि भारतीय चाय उद्योग श्री लंका, पूर्वी अफ्रीका आदि देशों से किसी प्रकार पीछे न रहे। यह चाय उद्योग के सतत प्रयत्नों और चाय बोर्ड के सक्रिय संरक्षण का ही परिणाम है कि वित्तीय वर्ष 1967-68 में भारत चाय-निर्यात में आगे

बढ़ सका है। विदेशी मुद्रा अर्जित करने में चाय उद्योग को भारत में दूसरा स्थान प्राप्त है।

भारत सरकार की चौथी और पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं में भी चाय को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय चाय उद्योग में विदेशी मुद्रा अर्जित करने की पर्याप्त संभावनाएं हैं, और देश को भी अपने चाय उद्योग से बहुत आशाएं हैं।

8

चाय—अन्य देशों में

चीन

चीन से ही संसार को 'टी' शब्द और यह पेय प्राप्त हुआ। शताब्दियों से चाय के पौधे की उपज चीन में ही होती रही और चाय की पत्तियां वहीं तैयार की जाती रहीं; परन्तु हमें चीन में चाय के निर्माण संबंधी तथ्य और अन्य सूचनाएं प्राप्त नहीं हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चीन से चाय का निर्यात यथेष्ट मात्रा में होता था, और वहां से संसार में चाय का निर्यात करने का एकाधिकार अंग्रेज़ों के हाथों में था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक चाय का उत्पादन भारत और श्रीलंका में भी होने लगा; और धीरे-धीरे इसके निर्यात का नेतृत्व भारत ने संभाल लिया।

सन् 1886 में चीन द्वारा लगभग 1,360 लाख किलोग्राम चाय का निर्यात किया गया था जिसमें से केवल इंगलैंड द्वारा 770 लाख किलोग्राम चाय खरीदी गई थी। उस वर्ष भारत में केवल 410 लाख किलोग्राम चाय का उत्पादन हुआ था।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष में चीन द्वारा 910 लाख किलोग्राम चाय का निर्यात किया गया, परन्तु सन् 1930 तक चीन द्वारा निर्यातित चाय की मात्रा घट कर आधी रह गई। तदुपरांत चीन युद्ध में फंस गया और चाय का निर्यात घट कर केवल 135 लाख किलोग्राम रह गया। वर्ष 1950 के बाद के

चीन से चाय के निर्यात के आंकड़ों के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं है। प्राप्य आंकड़ों में रूस और पूर्वी यूरोप को भेजी गई चाय सम्मिलित नहीं की गई है। अन्य देशों को भेजी जाने वाली चाय की मात्रा लगभग 115 लाख किलोग्राम प्रतिवर्ष रही है। इसमें से अधिकतर हरी चाय है।

चीन द्वारा काली, हरी, ऊलांग, सुगंधित चाय, तथा चाय की गोलियों का निर्यात किया जाता रहा है, परन्तु आजकल चीन का चाय-उद्योग पिछड़ गया है। वहां न तो नई मशीनें अपनाई गई हैं और न व्यापार के नये ढंग उपयोग किए गए हैं।

चीन की चाय का मानक वर्गीकरण नहीं किया जाता। मोटे तौर पर चीन की चाय को दो वर्गों में बांटा जा सकता है—पत्तियां और सम्पीडित। सम्पीडित चाय गोलियों या चौकोर ईंटों की शक्ल में आती है। चाय का वर्गीकरण निर्माण-प्रक्रिया, चाय के पौधे की आयु, आदि के आधार पर किया जाता है। वहां प्रत्येक प्रकार की चाय की कई श्रेणियां भी होती हैं।

चीन की चाय की अनेक किस्मों और श्रेणियों आदि की उलझन से बचने के लिए, विदेशी व्यापारी अपने ढंग से चीन की चाय का वर्गीकरण करते थे। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयत्न जे० एच० वेड ने किया। यह इंगलैंड में चाय के विशेषज्ञ माने जाते थे। उन्होंने चीन की काली चाय की 22 किस्में और हरी चाय की 6 किस्में बनाईं।

चीनियों द्वारा चाय को प्रायः पांच वर्गों में बांटा जाता है—लाल, हरी, पीली, लाल चाय की ईंटें, और हरी चाय की ईंटें। प्रत्येक वर्ग को आगे चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। इसके बाद इनका विभाजन उत्तम तथा साधारण के रूप में किया जाता है। इस वर्गीकरण के साथ प्रांत तथा जिले का नाम और जोड़ देते हैं। परिणामतः पूर्ण वर्गीकरण में लगभग कई हजार ग्रेड आ जाते हैं। पीली चाय का निर्यात नहीं किया जाता। इसे 'मेंडारिन' चाय कहते हैं। कम्युनिस्ट सत्ता से पूर्व राज-घरानों

और सम्मानित व्यक्तियों के लिए ही इसका उत्पादन किया जाता था। यह चाय बहुत अच्छी होती है, और इसे नवजात किसलयों से तैयार किया जाता है।

फारमोसा

फारमोसा द्वीप 352 किलोमीटर लम्बा और 144 किलोमीटर चौड़ा है। इस द्वीप में उत्तर से दक्षिण की ओर एक पर्वतमाला है जिसके पश्चिमी भाग में मैदान स्थित है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह द्वीप चीन के साथ सम्बद्ध रहा है। सन् 1894 में जापानियों ने इस द्वीप पर कब्जा कर लिया था, किन्तु सन् 1945 में यह पुनः चीनियों के अधीन आ गया है।

फारमोसा में चाय का आगमन चीन से हुआ। चाय की खेती द्वीप के उत्तरी क्षेत्र में होती है। लगभग 42,000 हेक्टर भूमि में चाय लगाई जाती है। आजकल इस द्वीप में लगभग 118 लाख किलोग्राम चाय का उत्पादन होता है जिसमें से लगभग 91 लाख किलोग्राम चाय का निर्यात किया जाता है।

जापान

औद्योगीकरण की दृष्टि से एशिया में जापान का प्रथम स्थान है; परन्तु जापान द्वारा दो ऐसी महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का भी निर्यात किया जाता है जिसका सम्बन्ध कृषि से है। इनमें से एक है रेशम और दूसरी चाय। पिछले पचास-साठ वर्षों में वहां चाय की तुलना में रेशम के उत्पादन की ओर अधिक ध्यान दिए जाने के बावजूद चाय के उत्पादन में वृद्धि हुई है। चाय-बागानों का क्षेत्र 60,000 हेक्टर से घट कर केवल 32,000 हेक्टर रह गया है, परन्तु चाय की उपज जो 1890 में लगभग 300 लाख किलोग्राम थी, आज लगभग 455 लाख किलोग्राम हो गई है। इससे यह स्पष्ट है कि जापान में चाय की खेती को अधिक सुव्यवस्थित किया जा सका है।

जापान में चाय का प्रयोग सैकड़ों वर्षों से किया जा रहा है। आरम्भ में लगभग 500 वर्षों तक चाय को प्रतिदिन के पेय के बजाए दवाई माना जाता था। वहां 1000 वर्षों तक अधिकतर हरी चाय का उत्पादन होता रहा है।

डच व्यापारियों ने 1610 में यूरोप में जापानी चाय पहुंचाने का काम शुरू किया। तदुपरांत अंग्रेज व्यापारी भी जापानी चाय खरीदने लगे। सन् 1664 में अंग्रेजों ने 100 लाख किलोग्राम से भी अधिक जापानी चाय खरीदी थी।

सन् 1937 में जापान में 540 लाख किलोग्राम चाय का उत्पादन हुआ जिसमें से 245 लाख किलोग्राम चाय का निर्यात किया गया था। इसमें से लगभग 91 लाख किलोग्राम चाय अमेरिका और कनाडा, और 50 लाख किलोग्राम चाय रूस और लगभग 45 लाख किलोग्राम चाय इंगलैंड भेजी गई।

जापान में चाय-बागानों का क्षेत्र सामान्यतया 0.1 हेक्टर होता है। चाय की खेती मुख्यतया शिजुका क्षेत्र और क्योतो जिलों में होती है। इनके अतिरिक्त क्युश्यू द्वीप का कुमामातो क्षेत्र भी चाय के लिए प्रसिद्ध है।

जापानी चाय को वर्गों में बांटने के कई ढंग हैं जो फसल के मौसम, निर्माण-प्रक्रिया और उत्पादन-क्षेत्र पर निर्भर करते हैं। प्रत्येक वर्ग की श्रेणियां पत्तियों के रंग, आकार आदि के अनुसार होती हैं।

जापान में चाय बनाने और चाय पीने को विशेष प्रकार का महत्त्व प्राप्त है। यह महत्त्व एक प्रकार से धार्मिक ही है। एक जमाना ऐसा भी था जब चाय-समारोहों का आयोजन अत्यन्त सुव्यवस्थित और धार्मिक पर्व के रूप में करने की प्रथा थी। घरों में चाय-कक्ष का वातावरण शुद्ध तथा मनमोहक रखा जाता था। चाय-कक्ष मकान के समीपस्थ बगीचे में स्थित होता था। उसे बेल-बूटों से सजाया जाता था। अतिथिगण अपने जूते तथा तलवार आदि बाहर रखकर ही चाय-कक्ष में प्रवेश करते थे।

आतिथेयी घुटनों के बल झुककर अतिथियों का स्वागत करता था। अतिथिगण तातोनामा के सामने झुकते थे। दीवार में छोटी अलमारी-सी होती थी जहां स्थित पूजा की वेदी को तातोनामा कहा जाता था, और यह कक्ष का मुख्य आकर्षण होती थी। उसके ऊपर केकेमोनो अर्थात् एक चित्र टंगा रहता था जिसे चाय-समारोह के उपरांत मानचित्र की तरह लपेट दिया जाता था। यह चित्र प्रायः सदाचार सम्बन्धी होता था, और इसके नीचे फूल अर्पित किए जाते थे। तदुपरांत आतिथेयी द्वारा चाय बनाने के बर्तन आदि करीने से सजाए जाते थे। इसके बाद अतिथिगण बाहर चले जाते थे और आतिथेयी पुनः बर्तनों को सजाकर रखते थे।

जब चाय का पानी उबलने लगता था, तो घण्टे-घड़ियाल बजाकर अतिथियों को आमंत्रित किया जाता था। अब अतिथियों के समक्ष भोजन-सामग्री रखी जाती थी। अंत में रेशमी दौने से चाय का चूरा निकाला जाता था और चाय के पात्र में डाला जाता था। तदुपरान्त रुई से ताप को पोंछ कर मुख्य अतिथि को चाय-पात्र पेश किया जाता था। मुख्य अतिथि [illegible] से ऊंची ध्वनि करते हुए चाय की चुस्की लेता था। फिर सब अतिथि बारी-बारी से चाय की चुस्कियां लेते थे। जब यह समारोह समाप्त हो जाता तो सब अतिथि विदा लेते थे।

चाय की उपर्युक्त प्रथा पन्द्रहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक प्रचलित रही। आजकल भी जापान में सामाजिक समारोहों के साथ-साथ [illegible] इस सम्बन्ध में [illegible] की पुनरावृत्ति देखने को मिलती है।

लंका

लंका [illegible] किलोमीटर लम्बा और 240 किलोमीटर चौड़ा द्वीप है। कैंडी इसकी पुरानी राजधानी है और कोलम्बो

आधुनिक बंदरगाह और व्यावसायिक केन्द्र है। श्रीलंका के दो-तिहाई भाग में केवल एक बार, और अन्य एक-तिहाई भाग में दो बार मानसूनी वर्षा होती है। दो बार वर्षा का यह क्षेत्र अत्यधिक हरा-भरा है। इसी एक तिहाई भाग में रबड, चाय आदि की उपज होती है।

कोलम्बो से बादुला की ओर रेल द्वारा यात्रा करते हुए 288 किलोमीटर लम्बे सफर में अनेक चाय-बागान देखने को मिलते हैं। कैंडी तक की 112 किलोमीमर की यात्रा में भी धान के खेतों के अलावा छितरे हुए चाय-बागान नजर आते हैं। कैंडी 510 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। उसके बाद नवलपितिया, जो 1200 मीटर की ऊंचाई पर है, के आसपास पर्याप्त चाय-बागान मौजूद है। इसके आगे दिकोया जिला आरम्भ होता है। इस क्षेत्र में पहले काफी-बागान थे, परन्तु अब उनका स्थान प्राय: चाय-बागानों ने ले लिया है। चाय की खेती के लिए दिकोया जिला प्रसिद्ध है, किन्तु उत्तम चाय के लिए दिकोया के समीप के दिम्बुला ज़िले का विशेष महत्त्व है। श्रीलंका की चाय शोध संस्था इसी क्षेत्र में स्थित है।

श्रीलंका में चाय-सम्बन्धी कुल क्षेत्र 222,000 हेक्टर है जिसका कुछ विवरण निम्न प्रकार है :

1200 मीटर से अधिक ऊंचाई पर स्थित चाय-बागानों का क्षेत्र	4,800	हेक्टर
600 से 1200 मीटर के बीच की ऊंचाई पर स्थित चाय-बागानों का क्षेत्र	88,000	"
600 मीटर से कम ऊंचाई पर स्थित चाय-बागानों का क्षेत्र	56,000	"
चाय-बागान सम्बन्धी वह क्षेत्र जो उपर्युक्त वर्गीकरण के अधीन नहीं है	30,000	एकड़
80 हेक्टर या अधिक भूमि वाले चाय-		

बागानों की संख्या	2,400
0.4 हेक्टर से कम भूमि वाले चाय-बागानों की संख्या	78,000

सन् 1869 में श्रीलंका में चाय की तुलना में काफी की खेती बहुत अधिक होती थी। किन्तु इन्हीं दिनों काफी की पत्तियों को एक महामारी ने तबाह कर दिया। इस महामारी के कारण 120,000 हेक्टर भूमि पर उगे हुए काफी के पौधे नष्ट हो गए। पहली बार 1875 में 400 हेक्टर भूमि पर चाय की खेती आरम्भ की गई। चाय की खेती को इतनी सफलता मिली कि 1895 तक 120,000 हेक्टर भूमि पर चाय की काश्त होने लगी। और 1967 में स्थिति यह है कि चाय-बागानों का क्षेत्र 242,331 हेक्टर है। श्रीलंका के चाय-बागानों में काम करने वाले मजदूरों की पर्याप्त संख्या दक्षिण भारतीय है।

श्रीलंका का चाय-उद्योग सुव्यवस्थित है और वह प्रायः दक्षिणी भारत के चाय-उद्योग के समान ही है। चाय की नीलामी या तो कोलम्बो में ही हो जाती है या उसे नीलामी के लिए लंदन भेज दिया जाता है।

चाय-उद्योग में श्रीलंका निरन्तर प्रगति करता जा रहा है। विशेष रूप से चाय का निर्यात करने में श्रीलंका को पर्याप्त सफलता मिल रही है। यह निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट है—

देश	1938 (हजार कि०ग्रा० में)	1961 (हजार कि०ग्रा० में)	1967 (मात्रा हजार कि०ग्रा० में)
इंगलैंड	75,450	72,730	83,134
कनाडा	3,640	8,636	7,641
आस्ट्रेलिया	5,910	19,545	18,686
अमेरिका	5,910	19,090	21,060

हुआ। *1935 में* चाय-बागानों से सम्बन्धित क्षेत्र लगभग 80 *हेक्टर था। अब धीरे-धीरे बढ़कर यह 4,800 हेक्टर हो गया है*

पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका में चाय-उद्योग के विकास की अत्यधिक संभावनाएं हैं। 1935 में वहां केवल 8,00 हेक्टर भूमि प ही चाय की खेती होती थी, किन्तु आज चाय-बागान 10,40 हेक्टर से भी अधिक भूमि पर फैले हुए हैं।

मारिशस द्वीप में भी चाय की काफी खेती होती है। य द्वीप यद्यपि अफ्रीका से अलग है, किन्तु चाय-उद्योग की दृष्टि इसे अफ्रीका के साथ ही माना जाता है। *यह द्वीप अफ्रीका के पू में 2240 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह द्वीप 64 किलो* मीटर लम्बा और 48 किलोमीटर चौड़ा है। यहां 1883 में चाय की खेती आरम्भ हुई। चाय-बागान केवल 1,000 हेक्टर भूमि पर ही फैले हुए हैं। यहां चाय-बागानों के बिस्तार में दो बाधाए प्रमुख हैं—भूमि की कमी और उत्पादन की अधिक लागत।

सन् 1960 और 1967 में अफ्रीकी चाय-क्षेत्रों में चाय उत्पादन का विवरण निम्न प्रकार है—

अफ्रीकी चाय-क्षेत्र तथा उत्पादन

	1960		*1967*	
	(क्षेत्र हेक्टर)	हजार कि०ग्रा० उत्पादन	(हेक्टरों में क्षेत्र)	(हजार कि० ग्रा० में उत्पादन)
केन्या	15,752	13,818	30,077	22,811
उगांडा	6,736	4,682	13,971	11,240
कांगो	8,800	4,545	8,820	6,021
तंगानीका	7,217	3,727	10,506	7,158
पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका	14,823	9,045	14,718	14,419
न्यासालैंड	11,961	11,864	14,151	16,831

दक्षिणी				
रोडेशिया	1,424	1,000	2,938	2,268
कैमरून्स	569	45	737	750
मारिशस	1,762	772	3,189	2,190

नैरोबी में 7 नवम्बर, 1956 को पहली बार चाय की नीलामी का उद्घाटन हुआ। 1957 में 11.36 लाख किलोग्राम चाय की बिक्री हुई। यह मात्रा बढ़ते-बढ़ते 1962 में 90.45 लाख किलोग्राम तक पहुंच गई।

अफ्रीकी देशों में चाय उद्योग के विस्तार की पर्याप्त गुंजाइश है। आज लगभग सभी अफ्रीकी देश स्वतंत्र हैं और वहां चाय उद्योग के विकास के लिए पर्याप्त प्रयत्न किए जा रहे हैं।

इंडोनेशिया

सत्रहवीं शताब्दी में यकार्ता पर डचों का कब्जा हो गया और उन्होंने उसका नाम बदलकर बटाविया कर दिया। धीरे-धीरे उन्होंने जावा, सुमात्रा और बोर्नियो पर भी कब्जा कर लिया। इनमें से जावा पर्याप्त विकसित द्वीप था; और सिनकोना पर, जिसकी छाल से कुनैन तैयार की जाती है, तो जावा का व्यावसायिक एकाधिपत्य रहा है।

दूसरे विश्वयुद्ध में कई वर्षों तक इंडोनेशिया पर जापान का अधिकार रहा। कुछ वर्षों तक चाय-बागानों की देख-रेख सम्बन्धी कार्य रुका रहा। किन्तु स्वतंत्र होने पर इंडोनेशियाई सरकार ने चाय-बागानों की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया।

जावा में चाय के पौधे 1690 में लगाए गए। डच ईस्ट-इंडिया कम्पनी के संरक्षण में 1835 तक चाय के 20 लाख पौधे लगाए जा चुके थे। 1882 में सोएकाबोएमी एग्रीकल्चरल सिंडीकेट की स्थापना हुई, और 1890 में सरकार ने चाय उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए योजनाएं बनाईं। 1905 में चाय निर्यात

ब्यूरो की स्थापना की गई। यह ब्यूरो चाय के व्यापार के सम्ब में परामर्श देता था। चाय जावा, बटाविया, सुमात्रा वेची ज थी, या नीलामी के लिए लंदन अथवा एम्स्टरडम भेजी ज थी। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से यकार्ता में चाय का बाज़ार ! गया है।

इंडोनेशिया हर वर्ष लगभग 341 लाख किलोग्राम चाय निर्यात करता है। चाय-निर्यात की दृष्टि से विश्व में इंडोनेशि को आजकल तीसरा स्थान प्राप्त है।

मलाया

यहां सन् 1874 में सिंगापुर के समीप वैलज़ली प्रांत में चा का पहला पौधा लगाया गया था। मलाया में रबड़ उद्योग को चा उद्योग की तुलना में प्राथमिकता प्राप्त है। इसलिए चाय-बागान की ओर कम ध्यान दिया गया। फिर भी 1925 में सरकार सरदांग में चाय के सम्बन्ध में खोज-बीन करने के लिए एक केन्द्र की स्थापना की।

1932 में चाय-बागान 960 हेक्टर भूमि में फैले हुए थे। 1940 तक इनका क्षेत्र बढ़कर 1,600 हेक्टर हो गया। आजकल लगभग 4,000 हेक्टर भूमि में चाय की खेती की जाती है।

1953 में चाय का कुल उत्पादन लगभग 19.1 लाख कि० ग्रा० था जिसमें से लगभग 18.2 लाख कि० ग्रा० काली, और शेष हरी चाय थी।

मलाया ने चाय का निर्यात सन् 1930 में आरम्भ किया और 1940 में 3 लाख कि० ग्रा० चाय बाहर भेजी। अब मलाया द्वारा हर वर्ष लगभग 9.91 लाख कि० ग्रा० चाय का निर्यात किया जाता है।

हिन्द-चीन

हिन्द-चीन में सैकड़ों वर्षों से चाय-पद्धति के अनुसार चाय

चाय का मुरब्बा अर्थात् लैंपेट-सो तैयार करने की विशेष पद्धति है। बांस की तली वाले लकड़ी के बक्से में चाय की पत्तियां भर दी जाती हैं। वह बक्सा उबलते हुए पानी के ऊपर रखा जाता है। पांच से दस मिनट तक वहां रखने के बाद पत्तियां चटाइयों पर बिछा दी जाती हैं और उन्हें 10 मिनट तक कूटा और मसला जाता है। तदुपरांत वे 1.8 मीटर गहरे और 1.5-1.8 मीटर व्यास के सीमेंट से बने गढ़े में डाली जाती है। फिर गढ़े का मुंह लकड़ी के तख्तों से ढंक दिया जाता है और उन पर भारी पत्थर रख देते है। इन गढ़ों में पत्तियां 10 दिन से लेकर 6 महीने या इससे भी अधिक समय तक दबी रहती है। पत्तियां जब गढ़े से निकाली जाती है तो गीली होती हैं और उनका रंग हरा चमकीला होता है। परन्तु हवा लगने पर ये पत्तियां काली पड़ जाती हैं। इस चाय में सिरके जैसी विशेष प्रकार की सुगन्ध होती है। लैंपेट-सो को नमकीन पानी से धोया जाता है। इसे सलाद के रूप में तेल, लहसन, आदि के साथ मिलाकर भोजन के लिए उपयोग किया जाता है। निर्यात के लिए लैंपेट-सो को बक्सों में भी बन्द किया जाता है।

लैंपेट-चाक या हरी चाय तैयार करने के लिए पत्तियों को पहले लैंपेट-सो के समान गरम किया जाता है, और फिर चटाइयों पर उनकी रोलिंग करके धूप में सुखाया जाता है।

अंग्रेजों ने दूसरे महायुद्ध से कुछ वर्ष पहले बर्मा में आधुनिक पद्धति के अनुसार काली चाय बनाने के लिए एक फैक्टरी स्थापित की थी। युद्ध में इस फैक्टरी को काफी क्षति पहुंची। 1946 में इस फैक्टरी ने पुन: कार्य आरम्भ कर दिया है।

बर्मा में 1947 में लगभग 54,545 कि० ग्रा० चाय का उत्पादन हुआ। धीरे-धीरे वहां चाय उद्योग की प्रगति होती रही। आजकल बर्मा में लगभग 4.5 लाख कि० ग्रा० चाय का उत्पादन होता है।

चाय का मुरब्बा अर्थात् लैपेट-सो तैयार करने की विशेष पद्धति है। बांस की तली वाले लकड़ी के बक्से में चाय की पत्तियां भर दी जाती हैं। यह बक्सा उबलते हुए पानी के ऊपर रखा जाता है। पांच से दस मिनट तक वहां रखने के बाद पत्तियां चटाइयों पर बिछा दी जाती हैं और उन्हें 10 मिनट तक कूटा और मसला जाता है। तदुपरांत वे 1.8 मीटर गहरे और 1.5-1.8 मीटर व्यास के सीमेंट से बने गढ़े में डाली जाती है। फिर गढ़े का मुंह लकड़ी के तख्तों से ढंक दिया जाता है और उन पर भारी पत्थर रख देते हैं। इन गढ़ों में पत्तियां 10 दिन से लेकर 6 महीने या इससे भी अधिक समय तक दबी रहती हैं। पत्तियां जब गढ़े से निकाली जाती है तो गीली होती हैं और उनका रंग हरा चमकीला होता है। परन्तु हवा लगने पर ये पत्तियां काली पड़ जाती हैं। इस चाय में सिरके जैसी विशेष प्रकार की सुगन्ध होती है। लैपेट-सो को नमकीन पानी से धोया जाता है। इसे सलाद के रूप में तेल, लहसुन, आदि के साथ मिलाकर भोजन के लिए उपयोग किया जाता है। निर्यात के लिए लैपेट-सो को बक्सों में भी बन्द किया जाता है।

लैपेट-चाक या हरी चाय तैयार करने के लिए पत्तियों को पहले लैपेट-सो के समान गरम किया जाता है, और फिर चटाइयों पर उनको रोलिंग करके धूप में सुखाया जाता है।

अंग्रेजों ने दूसरे महायुद्ध से कुछ वर्ष पहले बर्मा में आधुनिक पद्धति के अनुसार काली चाय बनाने के लिए एक फैक्टरी स्थापित की थी। युद्ध में इस फैक्टरी को काफी हानि पहुंची। 1946 में इस फैक्टरी ने पुनः कार्य आरम्भ कर दिया है।

बर्मा में 1947 में लगभग 54,545 कि० ग्रा० चाय का उत्पादन हुआ। धीरे-धीरे यहां चाय उद्योग की प्रगति होती रही। आजकल बर्मा में लगभग 4.5 लाख कि० ग्रा० चाय का उत्पादन होता है।

1950 में स्थिति यह हो गई कि चाय-बागानों
हेक्टर हो गया और प्रति वर्ष 182 लाख कि
उत्पादन होने लगा। आजकल वहां चाय-बागान
से भी अधिक भूमि पर फैले हुए हैं। ज्यार्जिया में
कोहकाफ के उत्तर में स्थित क्रेसनादर में
और ईरान के समीपस्थ रूसी क्षेत्रों में 6,800 हे
चाय की काश्त होती है। अन्य कई क्षेत्रों में चाय
प्रयोग किए जा रहे हैं। आजकल रूस में प्रतिव
कि० ग्रा० से भी अधिक चाय की उपज होती है।

रूस में 60 से भी अधिक सरकारी फैक्टरियां
परम्परागत पद्धति के अनुसार चाय का निर्माण किया ज
में निर्मित चाय देखने में तो अत्यधिक आकर्षक होती
स्वाद में वह उतनी अच्छी नहीं होती। भारत और श्री
चाय की तुलना में रूस की चाय की गुणवत्ता साधारण
है। वहां के लोग चाय को बिना दूध डाले, नींबू के टु
वोदका के साथ मिलाकर पीना पसंद करते हैं।

रूस में चाय के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अध्ययन करने
विशेष ध्यान दिया जा रहा है। ज्यार्जिया में ग्नासियली
हेक्टर भूमि पर फैला हुआ एक अनुसंधान केन्द्र है, जहां वि
प्रकार की चाय की खेती करके चाय उद्योग को अधिक प्रगति
और सुव्यवस्थित बनाने के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण तथा
संधान कार्य किया जाता है।

तुर्की

तुर्की के 160 किलोमीटर के

की पत्तियां सरकारी फैक्टरियों को वेचते हैं। उत्तम ढग से चाय तैयार करने के लिए वहां लगभग बीस फैक्टरियां हैं। ये रिज़े, अंकारा और इस्तंबुल मे स्थित हैं। तुर्की में चाय-विक्रय सम्बन्धी एकाधिकार केवल सरकार को प्राप्त है।

इन सरकारी फैक्टरियों में अत्याधुनिक उपकरण उपलब्ध हैं। चाय प्रायः परम्परागत पद्धति के अनुसार तैयार की जाती है। किन्तु चाय की उपज अधिक होने की स्थिति में तम्बाकू की पत्तियां काटनेवाली मशीनों को भी चाय निर्माण के लिए उपयोग किया जाता है। इस प्रकार कटी हुई पत्तियों को रोलिंग-प्रक्रिया के दूसरे चरण में अन्य पत्तियों के साथ मिला देते हैं। आगे की प्रक्रिया साधारण तौर पर की जाती है।

सन् 1962 में चाय-बागान 16,800 हेक्टर भूमि पर फैले हुए थे, और उस वर्ष 81.8 लाख किलोग्राम चाय का उत्पादन हुआ था। 1966 में चाय-बागानों की भूमि लगभग 20,000 हेक्टर हो गई और उस वर्ष 159 लाख कि० ग्रा० चाय का उत्पादन हुआ।

• • •

पुस्तक में उपयुक्त तकनीकी शब्दों के अंग्रेजी पर्याय

अंगमारी	blight
अगूरी कीड़ा	scarlet mite
अस्तर	lining
आमोटन	crumpling
आयात	import
आर्द्रता	humidity
आस्वादक	taster
इल्ली	caterpillar
उत्पादन	production
उर्वरक	fertiliser
ऊष्मा	heat
एकाधिकार	monopoly
एल्बीजिया चाइनेंसिस	Albizzia chinensis
एल्बीजिया स्टीपुलेटा	Albizzia stipulata
औद्योगीकरण	industrialisation
कल्प	period
कवक	fungus
कवकनाशी	fungicide
कार्बनिक	organic
काला विगलन	black rot
किसलय	leaf bud
किट्ट	rust
	insect

कीटनाशी	insecticide
कुचलना	crush
कृमि	worm
कैमेलिया साइनेंसिस	Camellia sinensis
कोशिका	cell
कॉर्टीसियम इनवीसम	Corticium invisum
क्रिटेशस	Cretaceous
क्रिस्टली	crystalline
क्षरण	erosion
गहन	intensive
गुणवत्ता	quality
गुलाबी कीड़ा	pink mite
घन	cube
घाटी	valley
घ्राण तंत्रिका	olfactory nerve
चीथना	tear
छँटाई	pruning
जल-निकास	drainage
जलवायु	climate
जैव	organic
झिनगा	caterpillar
झिनगा, रेंगने वाला	looper caterpillar
डिप्लोडिया	Diplodia
तना	stump
तल	level
तलछट	sediment
ताप	heat
तृतीय महाकल्प	Tertiary Era
दाब	pressure